CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

स्वामी विवेकानन्द

दिसम्बर १९६२

५० नये पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष ४३

वैदिक धर्म

अंक १२

क्रमांक १६७ : दिसम्बर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ मातृभूमिके लिए बलिदान (वैदिक प्रार्थना) ४४३

२ मेरे ऋग्वेद-संशोधनका सार

श्री ना. गो. चापेकर ४४४

३ गोवा इंक्विजिशनका लोमहर्षक वृत्तान्त

मूल ले.- श्री अ. का. प्रियोळकर

अनु.- श्रुतिशील शर्मा तर्कशिरोमणि ४४९

४ सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला इन्द्र

श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ४६०

५ ३- हिरण्यगर्भ

डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ४७१

६ परीक्षार्थियोंके लिए स्वर्णावसर ४८०

७ एकादशीका उपवास

मूल ले.- पं. श्री. दा. सातवलेकर

अनु.- श्रुतिशील शर्मा तर्कशिरोमणि १ से ८

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १-३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५-६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७-१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३-१८ इनमें क्रियापद-विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९-२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. =)

२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो. ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

" वैदिक धर्म "

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१. दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि ,, ,,	२)	.२५
३ शुनःशेप ,, ,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप ,, ,,	१)	.२५
५ काण्व ,, ,,	२)	.२५
६ सव्य ,, ,,	१)	.२५
७ नोधा ,, ,,	१)	.२५
८ पराशर ,, ,,	१)	.२५
९ गोतम ,, ,,	२)	.३७
१० कुत्स ,, ,,	२)	.३७
११ त्रित ,, ,,	१.५०	.३१
१२ संवनन ,, ,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ ,, ,,	.५०	.१२
१४ नारायण ,, ,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति ,, ,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी ,, ,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा ,, ,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि ,, ,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ ,, ,,	७)	१)
२० भरद्वाज ,, ,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

मातृभूमिके लिए बलिदान

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानाः
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ अथ. १२।१।६२

हे (पृथिवि) मातृभूमे ! (ते प्रसूताः) तुझमें उत्पन्न हुए सब लोग (अनू-अमीवाः अ-यक्ष्माः) रोगरहित व क्षय-रोगरहित तथा (अस्मभ्यं उपस्थाः) हमारे पास रहनेवाले (सन्तु) हों । तू (नः आयुः दीर्घं) हमारी आयुको लम्बी कर, हम बहुत वर्षों तक जीवें, (प्रतिबुध्यमानाः वयं) ज्ञान विज्ञान युक्त होकर हम (तुभ्यं बलिहृतः स्याम) तेरे लिए बलि देनेवाले हों ।

यह मातृभूमिकी सच्ची उपासना है । जब भी मातृभूमि-पर संकट आएं या कोई शत्रु मातृभूमि पर आक्रमण करे, तब हरएक पुत्रका कर्तव्य है कि वह अपनी माताकी रक्षाके लिए तैय्यार रहे । आपसके स्वार्थोंको दूर फेंककर, आपसकी शत्रुताको भुलाकर संगठित होकर शत्रुका सामना करना चाहिए । अपने खूनके आखिरी बूंदतक मातृभूमिकी रक्षामें बहा देना चाहिए । यही है सच्चा बलिदान और यही है मातृभूमिकी सच्ची उपासना ।

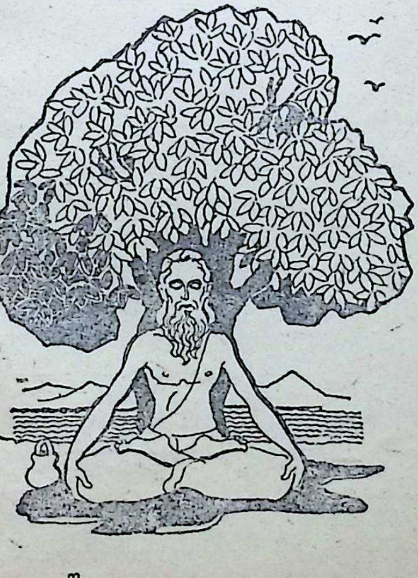

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरे ऋग्वेद–संशोधनका सार*

लेखक— श्री ना. गो. चापेकर

ऋग्वेदके अर्थात् ऋग् मंत्रोंके संशोधन करनेसे पहले 'ऋग्वेद' शब्दका ही संशोधन करना आवश्यक है। ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद ये शब्द ऋग्वेदमें नहीं हैं। 'ऋचः सामानि जज्ञिरे' 'यजुस्तस्मादजायत' अर्थात् ऋक्, यजु, साम ये शब्द हैं। पर 'वेद' शब्दकी उपाधि अभी लगी नहीं थी। ऋग्वेदका अर्थ है, ऋचाओंका वेद। पर इस ऋक्समूहको वेद कहनेका क्या कारण है ? इसका साम्प्रदायिक उत्तर है 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः' (ऐतरेय ब्राह्मण, प्रस्तावना)। पर यह कारण ऋग्वेदमें कहीं भी नहीं दिया है। वेदका अर्थ है, ज्ञान ऋचाओंका ज्ञान (ऋग्वेद), यजुका ज्ञान (यजुर्वेद), सामोंका ज्ञान (सामवेद), ऐसा अर्थ किया जा सकता है। पर इसमें अडचन यह है कि ज्ञानार्थी वेद शब्द ऋग्वेदमें नहीं है, वहां यह शब्द धनार्थी है। ब्राह्मणग्रंथोंके बाद यह शब्द प्रसारित हुआ होगा।

मण्डलोंके अनुसार ग्रंथोंका प्रणयन होनेके बाद उनके नामकी आवश्यकता प्रतीत हुई हो ऐसा भी सम्भव है। 'यः एवं वेद' यह शब्द प्रयोग ब्राह्मणग्रंथोंमें बार–बार आता है। तो क्या मंत्रोंको वेद नहीं कहते थे ? यदि कहते थे तो 'ऋचः एव वेदः ऋग्वेदः' यह समास करना पडेगा और षष्ठी तत्पुरुषको अमान्य करना पडेगा। पर यहां वेदका मतलब ज्ञान नहीं, वेदका अर्थ है वेद। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये शब्द मण्डलीकरणके बादके हैं, इसमें शंका नहीं। संशय है तो केवल वेदके अर्थके विषयमें। उसे पारिभाषिक शब्द मानें तो इससे भी मंत्र भागको वेद माननेका कारण स्पष्ट नहीं होता। आपस्तम्बका कथन है कि मंत्र और ब्राह्मण भागका नाम वेद है 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'।

इस कारण वेद संज्ञा कृष्ण यजुर्वेदके बाद अस्तित्वमें आई। क्योंकि तैत्तिरीय संहिता मंत्रब्राह्मणात्मक है। ब्राह्मण गद्यात्मक हैं। यजुर्वेदके अनुकूल पडे ऐसी वेदव्याख्याकी गई। यही व्याख्या आज सबको मान्य है। पर ऋग्वेदके अनुकूल यह किस प्रकार पडेगी, यह समझमें नहीं आता। ऐतरेय ब्राह्मणको कोई अपौरुषेय अथवा ईश्वर निश्वसित नहीं कहता। यहां इस लेखसे वेद' से मेरा अभिप्राय ऋक्मंत्रोंसे ही है। 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयं' यह वेदका लक्षण मुझे यहां अभिप्रेत नहीं है।

ऋक्का अर्थ

'वेद' के विवेचनके बाद अब हम 'ऋक्' शब्दकी विवेचना पर आते हैं। ऋक् शब्द 'अर्च' धातुसे बना है। पर व्याकरणकी दृष्टिसे यह कितना शुद्ध है यह कहना मुश्किल है। मेरे मतमें तो इसको एक स्वतंत्र शब्द ही मानना ठीक है। देवोंकी स्तुति जिन मंत्रोंसे होती है, वे ही ऋक् हैं। मैं उत्तरध्रुवके सिद्धान्तको माननेवाला हूं कि आर्य उत्तरध्रुवसे आये। वहांकी यज्ञपद्धति तथा महाभारतकालीन यज्ञ पद्धतिमें महान् अन्तर है। सोमरस निकालना, हविदेना, और सोमपानके लिए देवोंको निमंत्रण देना ये तीन मुख्य क्रियायें यज्ञमें होती हैं।

'उदिते होतव्यं' इस नियमके अनुसार बहुत समय तक रहनेवाली अन्धेरी रात शीघ्र ही खतम हो इसलिए इन्द्रादि देवोंकी प्रार्थना होती है। स्वाभाविक ही इस प्रार्थनाका महत्व बहुत ज्यादा है। स्तोत्र उत्तम हों इसलिए मंत्रकर्त्ता अपनी सब बुद्धि लगाकर उत्तम स्तोत्रोंकी रचना करते थे। ये स्तोत्र भी पुराने और नये होते थे। सोमरस निचोडते हुए भी सोमकी स्तुतिके स्तोत्र बोले जाते थे। पर सोमके स्तोत्र नये नये नहीं बनते थे ऐसा मालूम पडता है। इसी करण संभवतः उसके स्तोत्रोंका संग्रह एक ही मण्डलमें कर दिया गया। तात्पर्य यह कि यज्ञमें ऋक्मंत्रोंका महत्व बहुत है।

उत्तरीध्रुवको—मूलस्थानको छोडनेके बाद—

उत्तरीध्रुवको छोडनेके बाद इस प्रकारकी यज्ञ पद्धतिका स्थगित होजाना स्वाभाविक ही है। नये स्तोत्रोंका बनना

* सम्पादकका इस लेखसे सहमत होना अवश्यक नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बन्द होगया और पुराने स्तोत्रोंका ही पाठ चलता रहा। भारतमें आर्योंके स्थिर होजाने पर फिर यज्ञको महत्व मिला। यज्ञके प्रसारके साथ-साथ यजुर्मन्त्रोंकी संख्यामें भी वृद्धि होती गई। पर यज्ञका विस्तार एक ही जाति वा स्थानमें नहीं था। भारतमें वैदिक समाज बिखरा हुआ था। भारतमें भिन्न-भिन्न जातियां भिन्न-भिन्न स्थानों पर बसी हुई थीं। इस कारण इस यज्ञ क्रियामें जात्यनुसार विभिन्नता आगई, अथवा यूं भी कहा जा सकता है कि जातिकी विभिन्नताके कारण यज्ञ क्रिया अंशतः सामान्य रही और अंशतः विभिन्न होगई।

जब गृह्यजनकी पद्धति बंद होगई और यज्ञ प्रासंगिक तथा राजाश्रित होने लगे। ऋक्मंत्रोंकी महत्ता कम होगई और यजुर्मंत्रोंकी बढ गई। वेद विभिन्न अर्थात् स्वतंत्र हो गए वेदोंका विस्तार हुआ और यजुर्वेद और सामवेदकी स्वतंत्र सत्ता हुई। संहिता व ब्राह्मणका संग्रह करके कृष्ण यजुर्वेदकी रचना हुई। यास्कके अनुसार यजुका अर्थ हवि देनेके मंत्र है। ये कर्ममंत्र हैं। अब होत्र (छोटे यज्ञके) मंत्रोंका कोई मूल्य नहीं रहा। इसलिए वेद कर्ताओंको होत्र अपने-अपने वेदोंमें प्रविष्ट करने पडे। होत्रके मंत्र वैदिकोंकी स्मृतियोंमें थे और वे अनेक प्रकारके थे। ऋग्वेदके प्रति सब लोगोंका आदर क्यों है, इसका विचार किसीने नहीं किया। यजुर्वेदमें सायण कहते हैं—

अन्यैः सर्ववेदैः आदृतत्वात् (ऋग्वेदस्य) अभ्यर्हितत्वं प्रसिद्धम्। उत्तरीध्रुवके सिद्धान्तको माने बिना इस प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सकता। एक जगह और भी सायणने कहा है 'सर्व वेदगतानि ब्राह्मणानि स्वाभिहितेऽर्थे विश्वासदार्ढ्याय, तदेतदृचाभ्युक्तम् इति ऋचमेव उदाहरन्ति'। यजुर्वेदकी यद्यपि स्वतंत्र-सत्ता है, पर उसमें भी कई मंत्र ऋग्वेदके हैं। 'मंत्रकांडेषु अपि यजुर्वेदगतेषु तत्र तत्र अध्वर्युणा प्रयोज्याः ऋचः बहवः आम्नाताः। सामवेद तो करीब करीब ऋग्वेद ही है 'साम्नां तु सर्वेषां ऋक्-आश्रितत्वं प्रसिद्धम्'। इस कारण ऋग्वेदको सबने पूज्य माना है। तथापि इसके संशोधनकी आवश्यकता किसीको प्रतीत नहीं हुई यह आश्चर्य है।

ऋग्वेदके शब्दोंका अर्थ ऋग्वेदके आधार पर ही

ऋग्वेदके अभ्यासके निमित्तसे मैंने आजतक करीब करीब पचास शब्दोंकी विवेचनाकी है और पचाससे अधिक ऋचाओंका अर्थ भी मैंने किया है। श्री राजवाडेके समान ही मेरा भी मत है कि ऋग्वेदके मंत्रोंका अर्थ ऋग्वेदके आधार पर ही करना चाहिए। उदाहरणार्थ हम ऋचा ६।११।३ को लेते हैं। यह सम्पूर्ण सूक्त भरद्वाजका है। पर सूक्तमें कहीं भी भरद्वाजका नाम नहीं है। ऊपरकी ऋचामें रेभका नाम आया है, वह चरण इस प्रकार है- इष्टौ अंगिरस्वां विप्रः रेभः स्तौति- यज्ञमें अंगिरसोंमेंसे विद्वान् रेभ (ऋषि) स्तुति गाता है। रेभ शब्दका अर्थ स्तोता नहीं होता (पर आप्टेके कोशमें रेभका अर्थ A Praiser (स्तोता) ऐसा मिलता है- सम्पादक)। इस मंत्रका कर्ता रेभ है इसमें संशय नहीं।

पर सूक्तकार भरद्वाज समझा जाता है। इस कारणसे सायणाचार्यने रेभका अर्थ भरद्वाज किया है। रेभकी कथा इस प्रकार है कि एक बार रेभको असुरोंने एक कुंएमें डाल दिया था, बाद उसमें ९ दिन और १० रात तक पडा रहा। बादमें अश्विनौने उसे सजीव बाहर निकाला। यह कथा पहले मण्डलमें है। भरद्वाज और रेभ यदि एक ही होते तो छठे मण्डलमें भी भरद्वाजने इस घटनाका उल्लेख किया होता। पर वहां इस घटनाका उल्लेख न होनेसे इसका सहज ही अनुमान हो सकता है कि ये दोनों व्यक्ति एक न होकर भिन्न भिन्न थे। रेभ अपनेको अंगिरसोंमेंका कहता है, पर भरद्वाज और अंगिरसोंका नाता ऋग्वेदसे जरा भी सिद्ध नहीं होता। भरद्वाजका नाम सप्त ऋषियोंमें आता है। अंगिरस सप्तर्षियोंमें नहीं हैं। अतः ऋग्वेदसे बाहरकी कथाओंके आधार पर ऋग्वेदका अर्थ करना दोषपूर्ण है।

ऋग्वेद--एक काव्य

ऋग्वेदका अर्थ करनेसे पूर्व यह समझ लेना चाहिए कि ऋग्वेद एक काव्य है। आलंकारिक भाषा, रूपक, इनकी सहायतासे एक ही तत्त्व-देवता-की ओर विभिन्न दृष्टिसे देखना ब्राह्मणों-मंत्रकर्ताओंका मुख्य गुण था। इस गुणके कारण एक तत्त्वके लिए अनेक शब्दोंका प्रयोग होने लगा। श्री राजवाडेका यह कथन उपयुक्त है। ऋग्वेदकी तरफ देखनेकी यह दृष्टि रजवाडेने दी।

मूर्ति प्रतिष्ठाकी कल्पनाका उद्गम

ऋग्वेदका अभ्यास करते हुए मूर्ति प्रतिष्ठाकी कल्पनाका उद्गम भी मिला। पशु, पक्षी, वनस्पती विभिन्न जातियोंके प्रतीक हैं। अपने प्रतीकको पूज्य मानना, उससे अपने पूर्वजोंकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा समझना ये सब मान्यतायें उन उन लोगोंकी थीं। उदाहरणार्थ ऋग्वेदमें एक ऋषि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहता है- ' दध्यङ्, पुरातन अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और मनु इन्हें मेरे जन्मका पता है। ये पहलेके ऋषि और मनु मेरा जन्म जानते थे। उनका जन्म (जायतिः) देवोंसे हुआ और मेरा उनसे हुआ। स्तोत्रोंसे मैं इन्द्राग्नीकी स्तुति करता हूँ '। इसमें दध्यङ् आदिका जन्म देवोंसे हुआ ऐसा कहा है अर्थात् यह माना हुआ जन्म है। देव अर्थात् आकाशमें चमकनेवाले तारे ' मरुत्, उषा ये प्राकृतिक देवता इन ऋषियोंकी पूजाके प्रतीक थे। वसिष्ठ मित्रावरुणका पुत्र था यह स्पष्ट कहा है। गोत्र ऋषियोंमेंसे अगस्त्य एक तारा है। सायणाचार्यके अनुसार भृगु सूर्यकी किरणोंका नाम है। उगते हुए सूर्यके लाल गोलेको अंगिरस कहते हैं। अन्धकारके लिए वैदिक शब्द कण्व है। शुक्रका दूसरा नाम उशना था। इन्द्रको मनु शब्दसे सम्बोधित किया है। धर्मशास्त्रमें जिस अर्थमें गोत्र शब्द आया है, उस अर्थमें ऋग्वेदमें नहीं आया है। गोका अर्थ सूर्य किरण और गोत्रका अर्थ सूर्य किरणोंका समूह। अथर्वन् उगते हुए सूर्यके लाल गोलेका उपासक था। वह अपने यज्ञका प्रारम्भ मनुके अनुयायी शुक्रके उदयके साथ साथ करता था। ऐसा—

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि। आगा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ऋ. १।८३।५

(प्रथम अथर्वाने यज्ञके द्वारा मार्ग बनाया तब व्रतको पालन करनेवाला तेजस्वी सूर्य प्रकट हुआ। उशना (शुक्र) ने अपने काव्यकी सहायतासे गायोंको प्राप्त किया।)

इस मंत्रसे ज्ञात होता है। उषाके पहले अश्विनौका उदय होता है। एक मंत्रकार कहता है ' हे अश्विनौ ! तुम्हें रातमें की गई उपासना अच्छी लगती हैं ' (ऋ. १।४६।१४), यह कण्वकी उपासना है।

सप्तर्षियोंमें विश्वामित्र, भरद्वाज, अत्रि और वसिष्ठ ये चार ही ऋषि मंत्रकार हैं। इनके वंशजोंके सूक्त ऋग्वेदमें हैं ऐसी कई लोगोंकी धारणा है। पर यह निराधार है, इसका विवेचन मैंने अपने ' मंत्रकार ' नामक लेखमें किया है। सप्तर्षी नवग्वा पितर थे (ऋ. ६।२२।२) इसलिए उनकी संस्कृति भी भिन्न-भिन्न थी। ऋग्वेदके ३ से ८ वें मण्डल तकके कर्ता अथवा द्रष्टा गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ इस प्रकार क्रमसे थे। इसके कारण कुछ संशोधनकार भ्रान्त हो गये हैं।

शब्दोंके अभ्याससे निष्कर्ष

मेरे अध्ययन एक और परिणाम निकला। वह यह कि निघण्टुने मनुष्यवाचक २५ शब्द दिए हैं। इतने मनुष्यके पर्यायवाची शब्द किसी भी भाषामें नहीं हैं, इस शंकासे मैंने इन शब्दोंका अध्ययन किया। तब उनमें निहित अर्थ भेद मेरी समझमें आया। इससे पूर्व किसीने इनमें अर्थभेद दिखाया हो ऐसा मुझे दीखता नहीं। सायणने निघण्टु को प्रमाण मानकर प्रत्येक जगह पर मनुष्य, लोक, प्रजा, जन आदि अर्थ किया है। मेरे अर्थ इनसे भिन्न होनेके कारण सब ऋचाओंका अर्थ मुझे बदलना पडा। उदाहरणार्थ— मनुष्य का अर्थ केवल मनुष्य नहीं, अपितु वे लोग जिन्होंने मनुकी पद्धतिको अपनाया। नर शब्दका सम्बन्ध यज्ञ क्रियासे सम्बन्धित प्रमुख कर्त्ताओंसे है, ये कर्ता चाहे देव हों, ऋत्विक् हों अथवा यजमान या दानी हों। कृष्टि, चर्षणी, और क्षिति इन शब्दोंको भी निघण्टुकारने मनुष्य वाची बताया है, पर यह कथन गलत है। मैंने अपने लेखमें दिखाया है कि मनुष्यके समान कृष्टि भी मनुके अनुयायी थे। इनकी अपनी एक स्वतंत्र जमात थी। इसी प्रकार चर्षणी भी। चर्षणयः का अर्थ है आकाशके तारे। तारोंके चमकते हुए अर्थात् रातमें अग्निपूजन करनेवाले चर्षणी होते हैं। कृष्टीके समान इनकी भी एक पृथक् जमात है। इन लोगोंके नाम भी नक्षत्रोंके आधार पर पडे हैं। तारे इन लोकके पूज्यस्थान (टोटेम) थे।

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनां। अपो याचामि भेषजम्। ऋ. १०।९।५

(धनों पर शासन करनेवाले, चर्षणियोंको बसानेवाले पानियोंसे हम औषधि मांगते हैं)

इस मंत्रसे भी सिद्ध होता है कि चर्षणि शब्द मनुष्य वाचक नहीं है। चर्षणि शब्दकी सिद्धि ' कृष् ' धातुसे भी होनी संभव है। उस अवस्थामें चर्षणीका अर्थ होगा ' कृषक ' (किसान)।

' क्षिति ' यह स्थानवाचक शब्द है, अतः एक प्रदेश-विशेषमें रहनेवाले ' क्षितयः ' हैं।

' नाहुष ' एक स्वतंत्र मनुष्योंके समाजका नाम है। उसका प्रमुख नहुष था। यह समाज मनु संप्रदायमेंसे था अर्थात् मनुकी यज्ञ पद्धतिको इन्होंने स्वीकार कर लिया था।

निघंटुकारका अध्ययन संशयास्पद

निघण्टुकार द्वारा किया गया ऋग्वेदका अध्ययन संशया-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पष्ट प्रतीत होता है, क्यों कि 'पृतना' शब्दका समावेश उसने मनुष्यवाची शब्दोंमें किया है। सायणने भी एक दो स्थल छोडकर निघण्टुकारके कथनको अमान्य कर दिया है। पूरे ऋग्वेदमें ५९ स्थलों पर यह शब्द आया है। प्रत्येक जगह सायणाचार्यने रणक्षेत्र ऐसा अर्थ किया है। मेरे विचारमें पृतनाका अर्थ रात्री (अन्धकार) अथवा मेघ होना चाहिए। पृतनाका अर्थ सैन्य (सेना) नहीं हो सकता। इन्द्रका वृत्रके साथ होनेवाला युद्ध पृतना है।

याजक और अयाजक

ऋग्वेदकालीन समाजमें याजक और अयाजक ऐसे दो भेद थे। राक्षस् और पणि अयाजक होनेके कारण याजकोंके कट्टर शत्रु थे। उनकी संज्ञा 'यज्ञविध्वंसक' उनके अनुरूप थी। यज्ञोंमें विघ्न डालना ये अपना धर्म मानते थे। कभी कभी तो यजमान और ऋत्विजोंको भी वे अग्निकुण्डमें डाल देते थे। अत्रि ऋषिको उन्होंने यज्ञकुण्डमें डाल दिया था। इस कारण यज्ञभूमि उस समय रणभूमि बन गई थी। 'सर्वेषामविरोधेन यज्ञकर्म समारभे' इस वचन में निहित भयका कारण प्राचीनकालमें याजक और अयाजकोंके बीचमें होनेवाला झगडा ही था। पणिलोग पर्वत पर रहते थे। राक्षस उत्तरमें पंजाबसे आगे रहनेवाले होगें और वे बहुत समय तक टिकनेवाले अन्धेरेमें रहते होंगे। क्योंकि उनका नाम 'नक्तंचर' भी है। अन्धेरेमें उनकी शक्ति बढती है और उनकी स्त्रियां नंग-धडंग घूमती हैं ऐसे वर्णन भी मिलते हैं।

आदित्य, रुद्र और वसु

याजक समाजमें भी दो पक्ष थे। एक पक्ष निःसंशय मनुका था। द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वीके मिलाकर मनुके ३३ देव थे (प्रत्येक स्थानपर ११-११) इनके नाम क्रमशः आदित्य, रुद्र और वसु थे। मनुको 'पिता' पदसे सम्बोधित किया है। ऋग्वेदकालीन मनु 'पुराण पुरुष' था।

मित्र, वरुण, दधिक्रावा

मित्र, वरुण और दधिक्रावा ये कृष्टिके मित्र थे। ये याजक इंद्रके शत्रु थे। बादमें वसिष्ठने प्रयत्न करके इन्द्रको कृष्टिके देवोंमें स्थान दिला दिया। इनकी और मनुकी यज्ञपद्धतिमें बहुत समानता रही होगी। कृष्टियोंकी हविको 'स्वधा' कहते हैं। कृष्टि पितृसंस्कृतिके रहे होंगे। 'स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति' (ऋ. १०।१४।३) में स्पष्ट कहा है कि कुछ देव स्वाहासे आनन्दित होते हैं और कुछ देव स्वधासे। मनुद्वारा स्थापित की गई अग्निके ही कृष्टी उपासक थे। इसी कारण 'मानुषी कृष्टिः' यह शब्द बना।

कण्वने भी मनुकी अग्नि लेकर अपने यज्ञ कर्म शुरु किए।

क्षिति अर्थात् प्रदेश

क्षिति शब्दका अर्थ सायणाचार्य घर करते हैं, पर मैं प्रदेश या प्रान्त करता हूँ। तिलकके उत्तरी ध्रुवके सिद्धान्तको माननेके बाद 'नवग्वा क्षिति' इस शब्दके आधार पर मानना पडेगा कि इनकी बस्ती उत्तरी ध्रुवके नीचे रही होगी। ये लोग अग्निपूजक थे तथा अपनी उत्पत्ति वैश्वानरसे मानते थे। कृष्टियोंके विषयमें अध्ययन करते हुए सोमपानका उल्लेख नहीं मिला।

वसु, वरुण, मित्र और अर्यमा ये चर्षणीके देव थे। इनमें भी इन्द्र नहीं है। संभवतः उनका इन्द्र दूसरे नामसे पुकारा जाता रहा होगा। चर्षणि, कृषि, आयव, नाहुष और मानुष इनका यजन प्रकार बहुत अंशोंमें समान ही रहा होगा। पितरोंको हवि देना इनकी विशेषता थी। चर्षणियोंके शत्रु भी थे। चर्षणी प्रायः प्राचीनोंमें गिने जाते रहें होंगे। क्योंकि इनके लिए 'पूर्वा' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ (ऋ. ३।४३।२) मंत्रमें ऋषि इन्द्रसे प्रार्थना करता है 'तू प्राचीन चर्षणियोंको छोडकर हमारी तरफ आ।'

नाहुष ये अग्निपूजक थे इसमें कोई संशय नहीं। तो भी ये इन्द्रको नहीं मानते थे। एक ऋषिका कहना है कि इन्द्रने। नहुषके बालबच्चोंका संहार किया। ययाति नाहुषोंमेंसे था आयु, नाहुष और मनुष्य इनके द्वारा पूजे जानेवाली अग्नियोंके नाम क्रमशः आयु, विश्पति और इळा थे ऐसा—

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम्। इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं
ऋ. १।३१।११

(देवोंने मनुष्य पर शासन करनेके लिए इळाको, नहुष पर शासन चलानेके लिए विश्पतिको और आयुके लिए आयुको उत्पन्न किया)

इस मंत्रसे प्रतीत होता है। इनके मंत्रोंकी संज्ञा कव्य थी। मित्र और वरुण इनके देव थे। अब प्रश्न यह है कि वर्त्तमान ऋग्वेदमें मंत्र ऋचाओंके हैं या कव्योंके ?

मनुष्योंके यज्ञ उषःकालसे पहले भी होते हैं (क्षपः आलि- ऋ. २।२।२)। किन्हींके यज्ञ प्रभातकालमें शुरु होते हैं। पर सायंकालमें यज्ञ करनेवाले नास्तिक समझे जाते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातर्यजध्वं अश्विनो हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ऋ. ५।७७।२

(हे मनुष्यो ! प्रातःकाल ही यज्ञ करो और अश्विनौंको हवि दो, क्योंकि सायंकालकी हवि देवोंतक नहीं जाती और (अजुष्ट) यह हवि असेव्य होती है)

इस समय दी गई हविको देव स्वीकार नहीं करते थे।

वर्णवाचक शब्दोंका अभाव

पुरुष सूक्तको छोडकर ऋग्वेदमें एक भी वर्णवाचक शब्द नहीं है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन शब्द तो दूसरी जगह मिलते ही नहीं, हां, ब्राह्मण शब्द जरूर मिलता है, पर वह भी वर्णवाचक नहीं। स्तोत्रकी रचना करनेवालेकी संज्ञा ब्राह्मण थी। (क्षत्रिय शब्द ऋग्वेदके अन्य स्थानोंमें भी मिलता है- सम्पादक)। ब्रह्म शब्दसे ब्राह्मण बना है। ब्रह्म अर्थात् स्तोत्र। 'ब्रह्म जानाति स ब्राह्मणः' यह ब्राह्मण शब्दकी व्युत्पत्ति बाद की है। इससे ऐसा प्रतीत होता है, कि ऋग्वेदमें कई सूक्त प्राचीन हैं और पुरुष सूक्त बहुतकालके पश्चात् ऋग्वेदमें समाविष्ट हुआ। यजुर्वेदमें तथा ब्राह्मण ग्रंथोंमें वर्णवाचक चारों शब्द भरपूर प्रमाणमें मिलते हैं। इस परसे ऋग्वेद और इतर वैदिक वाङ्मयकी काल गणना की जा सकती है। ब्राह्मण शब्दका अर्थ बिलकुल बदल गया। स्तोत्र कहनेवालेको ब्राह्मण कहनेकी पद्धति समाप्त हो गई। ऋग्वेदकी संहिता बनानेवालोंका ऋग्वेदका अभ्यास मर्यादित ही होना चाहिए। नहीं तो पुरुषसूक्तका अन्तर्भाव वे ऋग्वेदमें न करते।

राजन् शब्दका अर्थ

ऋग्वेदमें राजन् शब्द संशोधकको उलझा हुआ सा दीखता है। राजन्का अर्थ राज्य करनेवाला जिन्हें ऋग्वेदमें दीखता है वह उनका भ्रम है। राजते-शोभते इति इस अर्थमें ऋग्वेदमें सर्वत्र राजन् शब्दका प्रयोग हुआ है। इस शब्दके विस्तृत अर्थमें सभी विद्वान् अपने अपने अर्थ देख सकते है। प्रथम देवोंके लिए प्रयुक्त हुआ यह शब्द यज्ञस्थलमें द्रव्य बांटनेवाले धनिकोंके लिए भी इस शब्दका प्रयोग होने लगा। फिर अग्नि पूजक यजमानके लिए इसका प्रयोग क्यों न हो ? 'समितौ राजानः इव' यहां आए हुए समिति शब्दके कारण अध्ययन कर्त्ता चक्करमें पडता है और यहां राजाका अर्थ 'राज्यकर्ता' किए बिना और कोई चारा उसे नहीं दीखता। निघण्टुने समितिका अर्थ रणभूमि किया है। तथापि अथर्ववेदमें सायणने इसका अर्थ यज्ञ किया है। 'समिति शब्देन यज्ञ उच्यते' यह कहकर उसने यास्कका प्रमाण दिया है। 'यास्केन उक्तत्वात्' पर यास्कने यह कहां कहा है, यह किसीको नहीं पता। मेरे विचारमें मैं ही सबसे पहले इस शब्दको प्रकाश में लाया हूँ।

यज्ञ विरोधी लोग यज्ञके नाश करनेका प्रयत्न करते थे; वहां अर्थात् यज्ञस्थल पर मारामारी करते थे।

दाशराज्ञयुद्धका स्वरूप

राजन् शब्द ऋग्वेदमें किसी विशिष्ट प्रदेशके शासकके अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुआ है, यह सिद्ध हो जाने पर जो दाशराज्ञयुद्धका विचार ज्ञानकोशकारने किया है उसकी कोई मान्यता नहीं रह जाती। इस युद्धमें अकेला सुदास एक तरफ था और दूसरी तरफ १० प्रतिस्पर्धी थे। इसके पहले यह बता देना आवश्यक है कि सुदास अग्निपूजक था और उसका विरोध करनेवाले अयाज्ञिक थे। उनके नाम थे श्रुत, कवष, मध, भेद, अलु, द्रुह्यु, यंयु, चयमान, कवि और देवक। इन सबको नदीमें डुबाकर मार दिया गया। तोप, तलवार, बन्दूक आदि कुछ भी नहीं थे। इन्द्रने इन्हें डुबा दिया यह ध्यानमें रखने योग्य बात है।

तिलकके सिद्धान्तके अनुसार इस घटनाका अर्थ लगाना मुश्किल नहीं है, पर इसमें आये हुए परुष्णि नदीके उल्लेख के कारण यह मानना पडेगा कि यह युद्ध भारतमें ही हुआ था। यह युद्ध परुष्णि नदीके आसपास हुआ होगा। भेदको सिन्धुमें डुबाया ऐसा उल्लेख है, पर सिन्धुको परुष्णि भी माना जा सकता है। सिन्धु शब्द वेदोंमें सर्वसामान्य नदियोंके लिए प्रयुक्त हुआ है। सिन्धु और रावी (परुष्णि) के बीचमें दो नदियाँ है।

उनका उल्लेख ऋग्वेदके ७।१८। सूक्तमें नहीं है। 'यो मे हिरण्यसंदृशो दशराज्ञो अमंहत' (जिस कशूने सोनेके समान दस राजा मुझे दिए) इसमें कशूके द्वारा दस राजाओंको दिए जानेका वर्णन है। पर इन राजाओंको देने व लेनेवाला कौन है ? यहां राजाका अर्थ धनिक है। 'राज्ञः स्वनयस्य' (ऋ. १।१२६।२) का अर्थ है तेजस्वी स्वनय। वही अर्थ दाशराज्ञ युद्धमें दस राजाओंके सम्बन्धमें भी होगा। प्रस्तुत युद्धमें इन्द्रने चायमानके पुत्र कविको मारा ऐसा भी कहा है। चायमानके पुत्रको सायणने राजा शब्दसे सम्बोधित किया है। क्योंकि वे दानशूर थे।

ऐसे लेखसे लोगोंको ज्ञात होगा कि वेदके संशोधनकी अभी कितनी आवश्यकता है। ● ● ●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईसाई धर्मप्रचारकोंके अत्याचार

गोवा इंक्विजिशनका लोहमर्षक वृत्तान्त

मूल मराठी लेखक- श्री अ. का. प्रियोळकर

अनुवादक- श्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि

⊙

[सन् १५६० में अर्थात् लगभग ४०० वर्ष पूर्व भारतीयोंके लिए गोवामें एक भयंकर धार्मिक न्यायमन्दिरकी स्थापना ईसाई धर्मप्रचारकोंने की थी। उसने धर्म प्रचारमें किन किन अत्याचारों, षड्यंत्रोंका सहारा लिया, उसकी कल्पना पाठकोंको इस लेखमें मिलेगी।]

द्वितीय महायुद्ध अपने रंग पर था। उन्हीं दिनोंकी यह घटना है। बम्बई हाईकोर्टके मुख्यन्यायाधीश श्री सीताराम पाटकरका एक अत्यावश्यक संदेश मुझे मिला। मैं उनके बंगले पर गया। मुझे देखकर वे बडी अधीरतासे बोले,

' प्रियोळकार, आपको मेरा एक काम करना है, आप उसके लिए इन्कार न करें '। उनकी इस भूमिकाको सुनकर मैं जरा चक्करमें पड गया।'

' यदि मुझसे हो सका तो अवश्य करूंगा '। मैंने उत्तर दिया।

' सर चार्ल्स फॉसेट नामके एक मेरे मित्र इंग्लैण्डमें हैं। पहले वे बम्बई हाईकोर्टके मुख्यन्यायाधीश थे। श्रीमती फॉसेटने एक फ्रेन्च लेखक आबे कारेके द्वारा फ्रेंच भाषामें लिखित भ्रमण वृत्तान्तका अंग्रेजीमें अनुवाद किया है। सर फॉसेट उस पुस्तक पर टिप्पणियां लिख रहे हैं। उनके सामने अनेक शंकायें है, जिनका हल वे मुझसे चाहते हैं, इस लिए उन्होंने मेरे पास अपनी शंकायें भेजी हैं। उन शंकाओंका हल आपको करना है ', यह कहकर उन्होंने एक पत्र मुझे दिया।

यह काम मुझसे पूरा हो सकेगा इसमें मुझे शंका ही थी। पर ' यह मुझसे नहीं होगा ' यह कहना भी मुश्किल था। उन्हें भी अपने मित्रका काम पूरा करना था। उनकी बातोंसे मुझे ऐसा भी प्रतीत हुआ कि यह काम अन्य किसीसे न हो सकनेके कारण अन्तमें मुझे दिया गया है। घर आकर उस पत्रको मैंने तीन-चार बार पढा। आबेकारेने अपने प्रवासमें जिन स्थानोंके नामोंका उल्लेख किया है, वे आजकल कौनसे हैं, कहां हैं, इस तरहके अनेक प्रश्न उस पत्रमें थे। फ्रेंच भाषामें उन नामोंका उल्लेख होनेके कारण वे दुर्बोध हो गए थे। इस कामके लिए नक्शोंका, भौगोलिक ग्रंथोंका तथा दूसरे प्रवास विषयक ग्रंथोंका अध्ययन आवश्यक था। मैं स्थानीय एशियाटिक सोसायटी व विश्वविद्यालयके पुस्तकालयोंमें गया, पर ज्ञात हुआ कि सारे नक्शे तिजोरीमें रख दिए गए हैं। ताकि शत्रुदलका कोई व्यक्ति उन्हें हथियाकर उनका प्रयोग हवाई हमलेके लिए न कर सके। किसीको उन नक्शोंको न दिखाये जानेकी सख्त ताकीद सरकारकी तरफसे थी। तो भी एशियाटिक सोसायटीके तत्कालीन पुस्तकाध्यक्ष श्री रा. स. ल. कापडी व विश्वविद्यालयके डॉ. पु. म. जोशीने तिजोरियोंको खोलकर वे नक्शे मुझे दिए। करीब करीब एक सप्ताह तक उनका गहरा अध्ययन करके सर फॉसटकी सारी शंकायें दूर कीं। बादमें आबेकारेका वह यात्रा वर्णन तीन भागोंमें प्रकाशित हुआ।

आबेकारेकी पुस्तक प्रकाशित होनेवाली है, यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई क्योंकि इस पुस्तककी खोजमें मैं बहुत दिनोंसे था और बहुत खोज करने पर भी यह पुस्तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुझे कहीं मिल न सकी थी। उस पुस्तकमें एक गूढ रहस्य था, जिसके कारण मैं उसकी खोज़में था।

गोवा इंक्विजिशनकी पूर्वपरम्परा

१५६० में गोवामें ' इंक्विजिशन ' नामसे एक ' धार्मिक न्यायमन्दिर ' की स्थापना हुई। ' इंक्विजिशन ', जिसे ' धर्मसमीक्षण सभा ' भी कहा जा सकता है, का उद्गम बहुत पुराना है। पर गोवाके इंक्विजिशनकी परम्परा स्पेन तक जाती है। स्पेनमें इंक्विजिशनका संस्थापक ' तोमास तोर्केमाद ' (१४२०-१४९८) नामका पादरी था। एक पुर्तगाली ग्रन्थ (एन्साइक्लोपीडिया पेलाइमागेम-प्रोटो) में ऐसा वर्णन है कि वह पादरी यौवनावस्थामें एक मुसलमान युवतीसे प्रेम करता था, पर वह एक दूसरे मुसलमानसे प्रेम करती थी और वह उसके साथ ग्रेनाड भाग गई। इससे चिढकर पादरी मुसलमानोंके विरुद्ध होगया। स्पेनमें मुसलमानोंको लानेका श्रेय यहूदियोंको था, इस लिए यहूदियों पर भी उसका गुस्सा स्वभाविक ही था। अन्तमें इसी प्रेमभंग होनेके कारण वह दीक्षा लेकर सेंट डॉमिनिकनका अनुयायी बन गया और बादमें वह स्पेनके बडे बडे राजनैतिक नेताओंमें गिना जाने लगा। कास्तेलकी इजाबेलाके साथ आरागांवके वारिस फर्डिनाडका विवाह कराके उसने दोनों राज्योंका एकीकरण कर दिया। स्पेनसे मुसलमान और यहूदियोंके समूल नाशके लिए पादरीने इजाबेलासे पहले ही वचन ले लिया था।

इस कारण फर्डिनाड और इजाबेलाने अपनी इच्छा न होते हुए भी उसे इंक्विजिशन स्थापित करनेकी आज्ञा दी। इस प्रकार स्पेनिश इंक्विजिशनकी स्थापना सन् १४८१ में हुई। उसका पहला धर्मगुरु इजाबेला रानीका गुरु यही पादरी था। इसीने इंक्विजिशनके भयंकर कानून बनाये। जिन मुसलमानों व यहूदियोंने ईसाई धर्म स्वीकार नहीं किया, उन्हें उसने स्पेनसे बाहर निकाल दिया, और जिन लोगोंने निरुपाय होकर ईसाई धर्म स्वीकार किया उनका उसने यह कह कर कि ये अब भी अपने पुराने धर्मका पालन करते हैं, संहार कर दिया। तोर्केमादने अपने चौदह वर्षके शासन कालमें करीब करीब ८० हजार मनुष्यों पर मुकद्दमें चलाये और ८ हजार मनुष्योंको Auto de Fe (ऑटो डि फे) नामक इंक्विजिशनके धर्मोत्सवके अवसर बडी धूमधामसे जिन्दा जला दिया।

पुर्तगालमें यहूदी--विद्वेषकी वृद्धि

स्पेनमें यहूदियों पर भयंकर अत्याचार होनेके कारण यहूदी स्पेनसे भाग-भागकर पुर्तगालमें बसने लगे। उन पर भी तोर्केमादकी वक्रदृष्टि जा पडी। उसकी प्रेरणाके कारण पुर्तगालमें भी यहूदियों पर धीरे-धीरे अत्याचार होने लगे और उनके विरुद्ध कायदे कानून बनने लगे। १९४५ में पुर्तगालका राजा जॉन मर गया और उसका लडका आफोन्स भी घोडेसे गिरकर मर गया।

इस कारण उसका दूसरा भाई जो दो मेनुअल गद्दी पर बैठा। इसके शासनकालमें पुर्तगालको विशेषकर भारतमें भारी विजय प्राप्त होने कारण यह ' भाग्यवान् ' के नामसे भी प्रसिद्ध है। यह बहुत उदार था और गद्दी पर बैठते ही इसने यहूदियोंके विरुद्ध बनाये गए सारे कानूनोंको रद्द कर दिया। पर यहूदियोंके भाग्यने फिर पलटा खाया। मेनुअल बडे युवराज आफोन्सकी विधवा स्त्रीके प्रेममें पड गया और उससे उसने विवाह करना चाहा। वह स्पेनकी रानी इजाबेलकी सबसे बडी लडकी थी। मेनुअलके साथ शादी करनेसे इसने पहले मना किया पर बादमें अपनी माताके आग्रहके कारण एक शर्त पर विवाह करनेको राजी हुई।

वह शर्त यह थी कि सारे यहूदियोंको पुर्तगालसे निकाल दिया जाए। इस पर कई ईसाई धर्मोपदेशकोंने कहा कि यहूदियोंको बाहर निकाल देनेसे पुर्तगालके व्यापारको बहुत भारी धक्का पहुंचेगा, और यदि उन्हें जबर्दस्ती ईसाई बना भी लिया तो इच्छाके विरुद्ध उन्हें ईसाई बनानेके कारण उनकी आत्माका उद्धार नहीं होगा। पर इस प्रेमान्ध राजाने इन हितकारी बातों पर ध्यान नहीं दिया और दिसम्बर १९४६ में उसने निम्नलिखित घोषणा-पत्र निकाला—

' पुर्तगालमें जिन यहूदियोंने ईसाई धर्म स्वीकार नहीं किया है वे दस महीनेके अन्दर-अन्दर अपने जायदादकी व्यवस्था करके देश छोडकर चले जाएं, नहीं तो उनकी जायदाद जब्त करली जाएगी '।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतनेसे भी उसकी भावी रानीका समाधान नहीं हुआ, लिहाजा अप्रैलमें एक दूसरी राजाज्ञा निकली कि 'जो यहूदी ईसाईधर्म स्वीकार न करते हुए देशसे बाहर जाना चाहें, उनके चौदह वर्षसे कमके लडके उनसे जबर्दस्ती छीन लिए जायें और ईसाईयतके अनुसार उनका पालन करनेके लिए उन्हें ईसाईयोंको दे दिया जाए। इस आपत्तिसे बचनेके लिए कईयोंने अपने लडकोंको मार स्वयं भी आत्महत्या कर ली। बादमें यह आयुमर्यादा चौदहसे बढाकर बीस तक कर दी गई और ऐसे लडकोंको घसीट घसीटकर जबर्दस्ती बपतिस्माका पानी पिलाया गया।

बादमें उनके माता पितापर भी यह आपत्ति आई कि यदि ये ईसाईयत स्वीकार करलें तो उन्हें उनके लडके वापस मिल जायेंगे, नहीं तो उन्हें तीन दिन बिना अन्न जलके रखा जाए, ऐसी आज्ञा निकली। बादमें उन्हें जबर्दस्ती चर्चमें ले जाकर बपतिस्माका पानी पिलाया गया। पुर्तगाल छोडकर जानेके लिए तैय्यार २० हजार यहूदियोंमेंसे कईयोंने आत्महत्या कर ली और ७-८ हजार यहूदी ईसाईयों की आखोंमें धूल झोंककर अफ्रीका चले गए। बाकी मजबूर होकर ईसाई बन गए। इसी हलचलके बीच मेनुअलने अपना विवाह रचाया। पर यह रानी जल्दी ही मर गई और फिर राजाने उसकी छोटी बहिन मेरीके साथ शादी की।

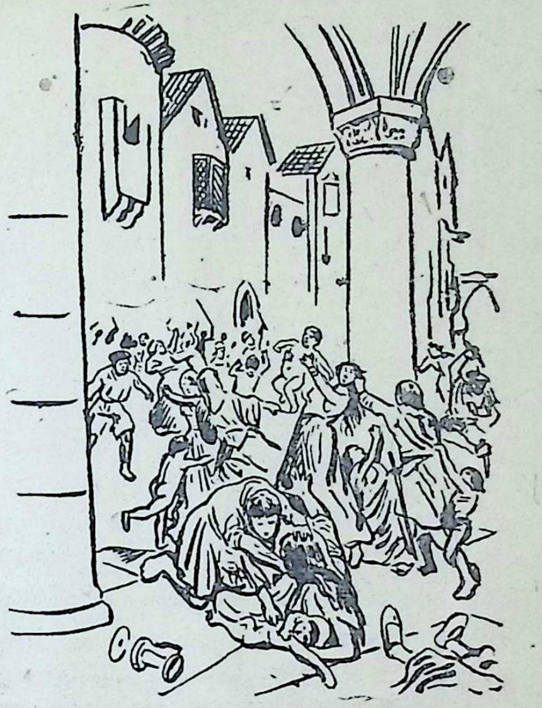

पुर्तगालमें यहूदियोंके बच्चोंको ईसाई बपतिस्मा देनेके लिए उनकी माताओंसे जबर्दस्ती छीन रहे हैं।

पुर्तगालमें नये ईसाइयोंका संहार

इस प्रकार बाह्यरूपसे तो यद्यपि यहूदी धर्म समाप्त हो गया पर नये क्रिश्चियन मनसे यहूदी ही थे। अतः एक नई राजाज्ञा निकली कि यदि अदालतमें उनका अपने पुराने धर्मके अनुसार चलना सिद्ध होजाए तो उनकी जायदाद जब्त कर ली जाए। यहूदियोंके ईसाईयतको स्वीकार कर लेने पर भी पुराने क्रिश्चियनोंके मनमें उनके प्रति द्वेष भावना ही भरी रही। वह बढती ही चली गई और यहूदियोंके विरुद्ध नये नये कानून बनने लगे। १५०३ में पुर्तगाल में अकाल पडा तो लोगोंने चिल्लाना शुरु कर दिया कि इसका कारण नये क्रिश्चियनोंका पाखण्ड ही है। १५०४ में पुर्तगालमें दंगा हो गया, १५०६ में पुर्तगालमें प्लेग फैला, पर इन सबके लिए यहूदी ही अपराधी ठहराये गए।

इस आपत्तिसे छुटकारेकी प्रार्थना करनेके लिए ईसाई चर्चमें इकट्ठे हुए। वहां ईसाकी मूर्तिके पास एक कांच का बर्तन रखा हुआ था, उस पर प्रकाश पडा और वह प्रतिबिम्बित होकर मूर्तिके ऊपर भी जा पडा यह देखकर लोग 'चमत्कार-चमत्कार' चिल्ला उठे। वहीं पर एक नया क्रिश्चियन नवयुवक खडा हुआ था, उसने कहा कि इसमें क्या चमत्कार है? वह तो प्रकाश प्रतिबिम्बित होकर मूर्ति पर पडा है। बस, इतना सुनना था कि लोग उस पर टूट पडे और उसको वहीं जानसे मार दिया और उसके शरीरको एक सार्वजनिक चौकमें ले जाकर टांग दिया। इससे सब जगह दंगा हो गया, और ईसाईयोंने जहां कहीं भी नया क्रिश्चियन देखा उसे वहीं मारना शुरु कर दिया। सब जगह लूटपाट मच गई।

इसमें पादरी प्रेरणा देते थे। नये क्रिश्चियनोंका खून सारे रास्तों पर बहने लगा। स्त्रियों पर अत्याचार किया। छोटे बच्चोंको जमीन पर पटककर मार दिया गया। कईयों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

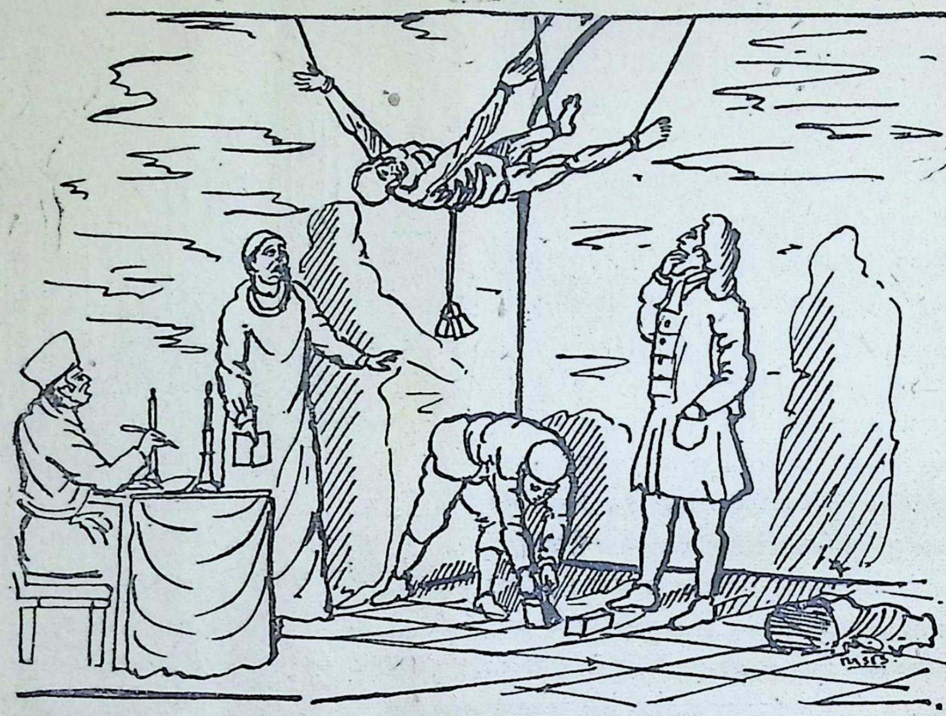

अपराध कबूल करवानेके लिए इंक्विजिटरोंके द्वारा अपराधियोंको दी जानेवाली यंत्रणायें।

को जिन्दा जला दिया, जिनके जलनेकी गंध सब शहरमें फैल गई। लोगोंको घरोंसे घसीट घसीटकर लाया जाता था और उन्हें आगमें झोंक दिया जाता था। जो आश्रयके लिए गिर्जाघरोंमें गए उन्हें भी नहीं बख्शा गया। इस प्रकार एक बडा भारी नरसंहार हुआ, जिसका हृदय-द्रावक वर्णन प्रसिद्ध पुर्तगाली इतिहासकार ऑलिवर मार्तिसने अपने इतिहासमें किया है (हिस्टोरिया डि पोर्तुगाल, टोमो II, लिस्बोआ १८८९ (४ था संस्करण) पृ. १५-१८) यह नरसंहार रविवारसे शुरु होकर तीन दिन और दो रात तक लगातार जारी रहा। तीसरे दिन सरकारकी आंखें खुलीं और सेनाकी सहायतासे उसने इस संहारको बन्द किया। अन्दाज है कि इस भयानक नरसंहारमें २ हजार मनुष्य जला दिए गए।

पुर्तगालमें इंक्विजिशनका प्रवेश

पुर्तगालमें इंक्विजिशन-स्थापनाका प्रयत्न बहुत अरसे से चालू था, पर तत्कालीन राजा इससे सहमत नहीं था। अतः उसके मरनेके बाद प्रयत्न फिरसे चालू हो गए। इस इंक्विजिशन स्थापनाका कार्य येह्रिकी नूनिस नामके एक यहूदीने ही अपने हाथमें लिया। पर बादमें इस बातका पता चलने पर दूसरे यहूदियोंसे उसे जानसे मार दिया। यद्यपि पादरी, पोप और जनसमाज भी इंक्विजिशनकी स्थापनाके विरुद्ध थे, पर ईसाइयोंने भगीरथ प्रयत्नके द्वारा इंक्विजिशन स्थापनाकी मान्यता सातवें पोप क्लेमेण्टसे १५३१ में लेली और १५३६ में पुर्तगालमें इंक्विजिशनकी स्थापना होगई।

न्यायके नाम पर अत्याचार

ऑलिवर मार्तिसने इंक्विजिशनका वर्णन 'न्यायमन्दिर-की आडमें पुलिसका षड्यंत्र' इन शब्दोंमें किया है। जो लोग केथोलिक धर्मको स्वीकार करनेके बाद अपने पुराने धर्म पर चलते थे, जो जादूटोना करते थे, जो प्रोटेस्टेण्ट अथवा दूसरे धर्मोंके ग्रंथ अपने पास रखते थे, जो पहिली स्त्रीके रहते हुए दूसरीसे विवाह करते थे, जो अनैसर्गिक संग करते थे, जो केथोलिक धर्ममें आनेवालोंके रास्तेमें विघ्न डालते थे, ऐसे लोगोंको अदालतमें अपराधी घोषित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

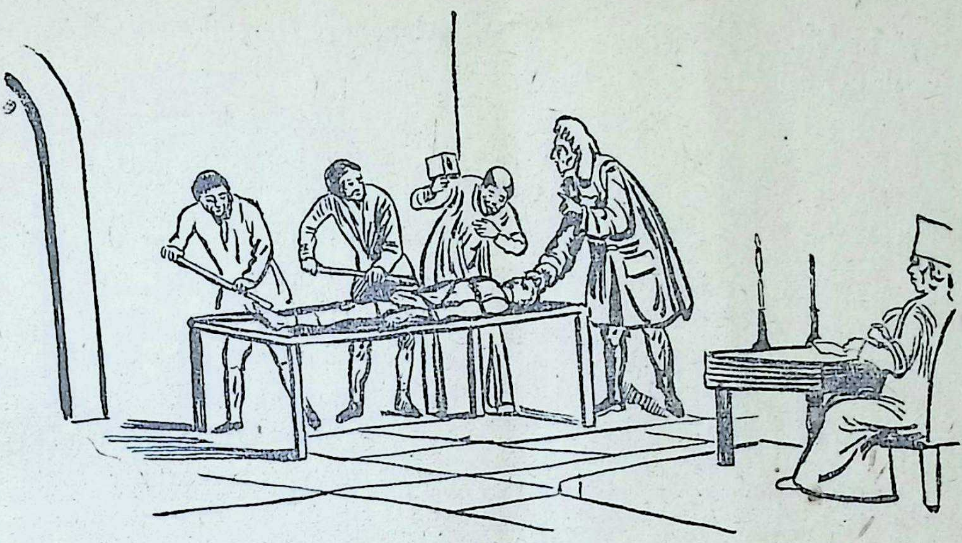

अपराधको मनवानेके लिए दी जानेवाली यंत्रणायें।

कर उनकी जायदाद जब्त करके उन्हें Auto de fe' नामक उत्सवमें जीवित जला दिया जाता था। अपराधके अन्वेषणकी दो पद्धतियोंका वर्णन Malleus Malefica-rum नामक ग्रंथमें है। इन पद्धतियोंका नाम था (१) Accusatorial (एक्यूजेटोरियल) और (२) Inquisitorial (इंक्विजिटोरियल)। पहली पद्धतिमें फरियादीको प्रतिवादी पर लगाये गए आरोप सिद्ध करने पडते थे और दूसरी पद्धतिमें वादी अपने प्रतिवादी पर समक्ष अथवा पत्र द्वारा आरोप लगाकर अलग हो जाता था। इंक्विजिशनमें यह दूसरी पद्धति चालू थी।

यह पद्धति ऐसी थी कि जब वादी प्रतिवादी पर केवल आरोप लगाकर अलग हो जाता था, तो अधिकारी प्रति-वादीको पकडकर तरह तरहकी यातनायें देते थे, ताकि वह अपना अपराध कबूल कर ले। जैसे ही Auto be fe' का उत्सव नजदीक आता वैसे ही एक अधिकारी प्रतिवादी पर लगाये हुए आरोपोंको पढकर सुनाता और उसे यह सलाह देता कि वह अपने अपराध कबूल कर ले और मुक्त हो जाए। जो कबूल कर लेता था, उसे थोडा सा दण्ड देकर छोड देते थे अन्यथा उसे आगमें झोंक देते थे। कई प्रतिवादी तो यातनाओंके कारण बीचमें ही मर जाते थे। पर फिर भी इन पर मुकदमा चालू ही रहता था, और मुकदमेमें यदि वे दोषी सिद्ध हो जाते थे तो इन मृतोंकी हड्डियां कब्रसे बाहर निकालकर दोषीके कृत्रिम पुतलेके साथ जला दीं जाती थीं।

यदि किसी मनुष्यने कुछ अपराध किया और दूसरे एक व्यक्तिने ज्ञात होने पर भी पहले मनुष्यके अपराधको इंक्वि-जिशनके सामने जाकर नहीं कहा, और बादमें यदि इंक्वि-जिशनको उस अपराधका पता लगा तो अपराधी और अपराधको छिपानेवाले दोनोंको दण्ड मिलता था। इस भय के कारण कोई भी अपने सगेके अपराधको भी छिपाकर नहीं रखता था। कोई कोई अपना बदला लेनेके लिए ही दूसरे पर झूठा अपराध लगा देते थे। अपराधीके जब्त हुए माल का आधा भाग आरोपीको मिलता था और आधा इंक्वि-जिशन ले लेता था, अतः कई धनके लोभसे भी दूसरों पर झूठा आरोप लगाते थे। फ्रांसो पिरार्द नामक एक फ्रेंचने अपने प्रवास वर्णनमें लिखा है कि एक डच व्यापारीकी स्त्रीने अपने पति पर प्रोटेस्टेण्ट धर्मग्रन्थको अपने पास रखनेका आरोप लगाया और इंक्विजिशनके द्वारा उसकी आधी सम्पत्ति प्राप्त कर ली।

स्पेनिश इंक्विजिशनका भारत-प्रवेश

इंक्विजिशनका आगमन भारतमें सबसे पहले गोवामें हुआ, वहां इसकी स्थापना हिन्दुओं और नव क्रिश्चियनोंके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

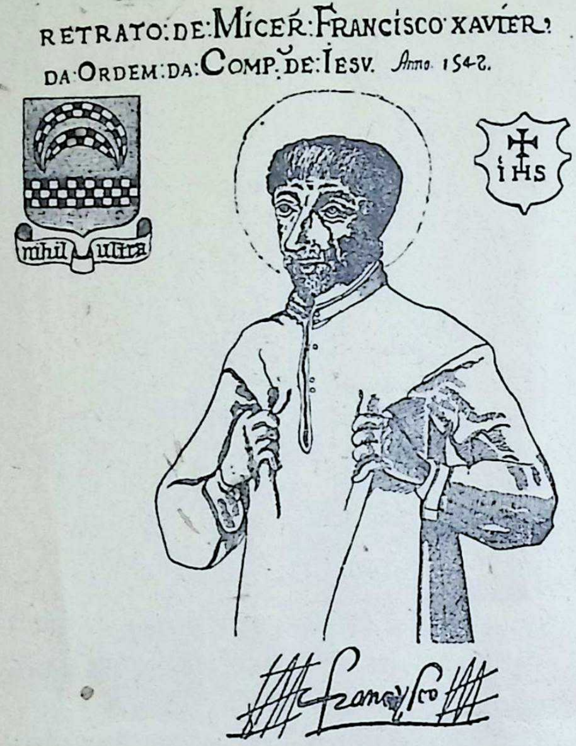

सेण्ट फ्रांसिस जेवियर

विरुद्ध हुई। यद्यपि हिन्दुओं पर यहूदियोंके समान अत्याचार नहीं हुए पर उनकी धार्मिक भावनाओंको ठेस अवश्य पहुंचाई गई। तत्कालीन गोवा सरकारके चीफ सेक्रेटरी मि. कुंज रिवैर लिखते हैं– 'हिन्दुओंके मन्दिर आक्रान्ताओंने तोडे, हिन्दुत्वके दर्शक वस्तुओंको नष्ट किया, हिन्दु धर्मग्रंथोंको जलाया, तथा ईसाई धर्मको स्वीकार न करनेवालोंको नष्ट करनेकी उनकी इच्छा थी। पर यह हिन्दुस्थान अमेरिका नहीं है। अमेरिकाके मूल निवासियोंको योरोपीय आक्रान्ताओंने अमेरिकासे खदेड दिया और वहां स्वयं बस गये। पर अमेरिका और हिंदुस्थानमें बडा अन्तर है।

उच्च संस्कृतिवाले हिंदुस्थानमें प्रचण्ड लोकसंख्याके विरोधके कारण ईसाईयोंको अपने अत्याचारको छोडना पडा। अतः उन्हें अप्रत्यक्ष साधनोंका सहारा लेना पडा'। यह चीफ सेक्रेटरी एक योरोपीय था। स्पेनिश इंक्विजिशन पर लिखे गये ग्रंथोंमें श्री एच. सी. ली का ग्रंथ (१९०६–७) आज भी उपलब्ध है। इंक्विजिशन पर लिखे गए ग्रंथोंमें Alexandre Herculano का 'पुर्तगालमें इंक्विजिशनका उगम और स्थापना' सर्व मान्य है।

गोवामें इंक्विजिशनकी स्थापना १५६० में हुई थी। पर उससे पहले भी १५४३ में Jaronimo Dias (जेरोनिमो डियास) नामक एक डाक्टरको यहूदी होनेके कारण जीवित जला दिया गया था। ऐसा उल्लेख Gaspaa Correa (गेस्पर कॉरी) ने अपने Lendasda India में किया हैं। हिन्दुस्तानमें इंक्विजिशनकी स्थापनाके लिए सेण्ट फ्रांसिस जेवियरने पुर्तगालके राजाको १६ मई १५४६ में एक पत्र लिखा। हजारों हिन्दुओंको जबर्दस्ती ईसाई बनानेके लिए इंक्विजिशनकी आवश्यकता जेवियरको शायद मालूम पडी हो अथवा पुर्तुगालियोंको स्वेच्छासे शासनका अधिकार मिले इस इच्छासे उसने इंक्विजिशनकी स्थापनाकी मांग की हो, यह भी संभव है। गोवामें इंक्विजिशन १५६० में स्थापित हुआ, और पुर्तुगालके उदार राजा मार्केजद पोंबालके शासन कालमें १० फरवरी १७७४ की राजाज्ञाके अनुसार इंक्विजिशन बन्द करना पडा। पर १७७९ में दोनों मारिय नामक रानीके कालमें यह फिर शुरु हो गया और अन्तमें १८१२ में इसका दपदबा गोवामें फैल गया। पर इस २५७ वर्षके इंक्विजिशनके इतिहासको किसीने नहीं लिखा, क्योंकि सब इसके नामसे ही घबराते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासकार फिलिफ नेरी लिखता है, कि 'मैंने इंक्विजिशनको भयंकर उसके कार्योंके कारण ही कहा है। लोगों पर उसकी धाक बैठ गई थी। और लोग उसे 'हुडले घर' कहते थे। एक दिन नावसे जाते हुए मैंने इंक्विजिशनकी इमारत कौनसी है यह जाननेके लिए उसकी तरफ अंगुलीसे इशारा किया, पर मेरे साथवालोंने मुझे वैसा करनेसे रोक दिया। और यह अवस्था भी उस समय थी जब कि इंक्विजिशन समाप्त होकर केवल नाम शेष रह गया था।'

Instruccoes dadas pelo Marquez de Alorna, 2 nd Ed. 1856, part II, P. P. 90

देलोंके द्वारा रहस्योद्घाटन

इंक्विजिशनके कार्य बडी गुप्ततासे चलते थे। यदि कोई कैदी सौभाग्यसे मुक्त हो भी जाता तो छूटते समय इथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिखकर देना पडता था कि वह बाहर जाकर कैदखानेके रहस्योंको नहीं बताएगा। यदि इस पर भी किसीने बाहर जाकर लोगोंको बता दिया तो उसे उसे भयंकर दण्ड मिलता था। तो भी चार्ल्स देलों नामक एक फ्रेंच डॉक्टरने कैदसे बाहर जाकर अपनी प्रतिज्ञा भंगकी और योरोप जाकर अपने कारावासकी हकीकतको एक पुस्तक रूपमें छपवा दिया।

डॉ. देलोंका जन्म १६४९ में हुआ और १६६९ में उसने भारतमें भ्रमण किया और अन्तमें वह दमन जाकर बस गया। उसके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। एक 'भारतका प्रवास' जो पेरिससे दो खण्डोंमें प्रकाशित हुआ, और दूसरा 'इंक्विजिशनका वृत्तान्त' जो लीडनसे १६८७ में प्रकाशित हुआ। इसमें उसने इंक्विजिशनके कारनामोंका भण्डाफोड किया है। पर यह देलोंका इतिहास बनावटी है ऐसा, डॉ. जेर्सन द कुञ्ज, फादर हेरास आदि इतिहास लेखकोंका मत है। १८ दिसम्बर १८८८ के दिन पढे गए एक निबन्धमें डॉ. जेर्सन द कुंज कहता है—

The Narration which goes by the name of M,· Dellon is a fabrication, a forgery. a fraud, although based on his genuine travels.

इसी प्रकार फादर हेरास लिखता है—

There are founded suspecions that the whole work of Dellon is tremendous forgery. 1

ब्रॉज फर्नांडिसका कथन है—

We have briefly examined and exposed the forgery known as Dellon's Hist-ry of the Inquisition in Goa, which has deceived Several generations of scholars, and which will most likely, go on deceiving. 2

पर मैंने जो खोज की उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि देलोंका इतिहास यथार्थ है, वह किसी तरहका धोखा नहीं है।

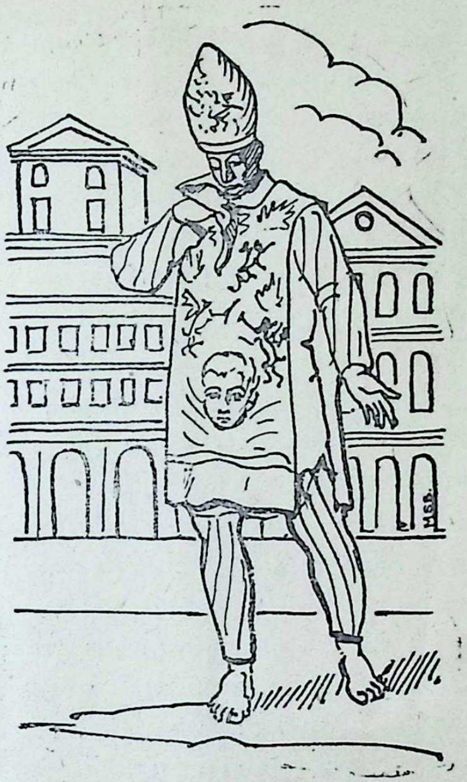

जीवित जलानेका दण्ड प्राप्त किया हुआ इंक्वि-जिशनका कैदी अपने विशिष्ट पोशाकमें।

डॉ. देलों दमनके कैदमें रहते हुए आबेकारेसे मिले थे, ऐसा उसने अपने 'गोवा इंक्विजिशनके वृत्तान्त' में लिखा है। डॉ. देलोंने अपने पकडे जानेका कारण अपने वृत्तान्तमें बताया है। वह संक्षेपमें इस प्रकार है- 'एक बार एक पुर्तगालीका लडका बीमार पड गया और उसका रक्त निकालनेके लिए मुझे बुलाया गया। उस लडकेके बिछौने पर हाथी दान्त की बनी हुई मेरीकी एक मूर्ति मैंने देखी। उस पर उसकी बडी भक्ति थी और वह बार बार उस मूर्तिको चूमता था। मैंने उससे कहा कि जरा ठीक रहो, नहीं तो तुम्हारा रक्त मूर्ति पर गिर जायेगा। मेरी वह बात सुनकर उसे क्रोध आ गया और बोला कि फ्रेंच लोग पाखण्डी होते हैं, इसलिए वे पूजा नहीं करते। इसके थोडे समय बाद मेरा एक पडौसी मेरे घर आया तथा मेरे

---

1 The decay of the portuguese power in India (एक निबन्ध २७ मार्च १९२७)

2 Anglo-Lusi-tans (बम्बई वृत्तपत्र)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिछौनेके पास ईसाकी मूर्ति देखकर बोला कि जब तुम कोई स्त्री अपने घर ले जाओ अर्थात् कुकर्म करने लगो तो इस मूर्ति पर कपडा डालना न भूलो। इस पर मैं बोला कि क्या तुम यह समझते हो कि इस प्रकार अपने कुकर्मोंको ईश्वरसे छुपा लोगे। अपने पाप पर परदा डालकर उसे परमेश्वरसे छुपानेकी तुम्हारी कल्पना ही गलत है। और यह ईसाकी मूर्ति क्या है ? सिर्फ हाथीदान्तका एक टुकडा'। इतना सुनना था कि वह उठा और सीधा इंक्विजिशनके पास जाकर उसने सब हाल कह सुनाया।

पर यह तो देलोंको पकडनेका बाह्य कारण था, पर अन्दरका कारण और ही था। उस कारणको देलों बताते हुए आगे लिखता है—

'इंक्विजिशनके नियमानुसार यह कारण ही मुझे कैदमें डालनेके लिए काफी था। फिर भी मैं इस कारणसे छूट सकता था यदि दमनके गवर्नर फुर्ताद द मेंदोसके साथ मेरी शत्रुता न होती तो। वह ऊपरसे मुझसे मित्रताका व्यवहार करता था, पर अन्दरसे चाहता था कि मैं किसी प्रकार दमनसे निकाल दिया जाऊं। और मुझे दमनसे निकाल कर अपने रास्तेका कांटा दूर करना चाहता था। वह जिस स्त्रीसे प्रेम करता था, उसके यहां मेरा भी आना जाना होता था। पर निष्पाप भावनासे। पर गवर्नर समझता कि उस स्त्रीका मुझ पर ज्यादा प्रेम है। इंक्विजिशनका एक कार्यवाह धर्मोपदेशक भी, जो उसी स्त्रीके घरके सामने रहता था, उस पर आसक्त था, और अपनी वासना तृप्तिके लिए वह स्त्रीको सताता भी था। ऐसा उस स्त्रीने मुझसे कहा।

उस स्त्रीके यहां मेरा आना जाना देखकर वह भी मुझसे द्वेष करने लगा। मेरी और उसकी बडी मित्रता थी और मैंने उस पर कई उपकार भी किए पर मुझसे बदला लेनेके लिए वह गवर्नरसे जाकर मिल गया।

'इस प्रकार दोनोंने मिलकर मेरे विरुद्ध जाल रचा और इंक्विजिटरोंके द्वारा मुझे पकडवा दिया।'

आबे कारेसे भेंट

१६७३ सन्‌के बडे दिनके अवसर पर आबे कारे दमनमें था और देलोंके साथ उसकी भेंट हुई थी, इस बातपर ब्रॉज फेर्नांडीस सहमत नहीं है। पर लेडी फॉसेट द्वारा किए गए भाषान्तरके देखने पर इस विषयमें कोई शंका नहीं रहती।

'ता. २२ दिसम्बर (१६७३) को हम तारापुरसे चले और सबेरे दहाणू पहुंचे, वहांसे हम आगे चले और नारगोळमें पहुंचकर हमने रात बिताई। वहांसे अगले दिन अर्थात् २३ तारीखको नारगोळसे निकल कर हम करीब दस बजे दमन पहुंच गए' ऐसा आबेकारे अपने प्रवास वर्णनमें लिखता है।

'दमनमें आकर हमेशाकी तरह हम मि. निकोलस विदाल नामक एक फ्रेंच गृहस्थके घर रहने गए। पर उनकी स्त्रीकी बीमारीके कारण वहां न रहकर हम दूसरी जगह गए।'

जिस स्त्रीके कारण डॉ. देलों पर आपत्ति आई थी, वह स्त्री मिसेज विदाल ही थी। इस प्रकरणका विस्तार कारेने इस प्रकार दिया है।

विदालकी करुण कहानी

'दमनमें विदालके विवाहको पन्द्रह वर्ष हो चुके थे। पहले उसने अनेक राज्योंमें जहाजों द्वारा व्यापार करके बडा धन कमा लिया था। आठ वर्षकी उम्रका उसका एक लडका भी था। वह अपनी पत्नीको अत्यन्त सुशील और चरित्रवान् समझता था, क्योंकि उसकी पत्नीने गवर्नरके साथ चलनेवाली अपनी प्रेम कथाको अपने पतिसे छिपा कर रखा था। इसी वर्ष विदाल गवर्नरके मालवाही जहाजके कप्तानके रूपमें मोजाम्बिकको यात्रा करके जब दस महीने बाद अपने घर लौटा तो देखा कि उसकी स्त्रीके पेटमें सात महीनेका गर्भ है, इससे उसके दिलको बडा धक्का पहुंचा। गवर्नर तथा अपनी स्त्रीके बीचमें अनैतिक सम्बन्ध देखकर तथा यह जानकर कि वह गवर्नरके घर प्रति रात्री जाती थी, उसे बहुत दुःख हुआ। दमनका गवर्नर वाइसरायका निकटका सम्बन्धी था, उसका विवाह हो चुका था और बीस वर्षकी आयुका उसके एक पुत्र भी था। उसके पास अनेक रखैलें भी थीं।

इतना सब होते हुए भी उसने अपने मित्रके साथ, जिसने अपने जीवनको भी खतरेमें डालकर अपने मालिकके लिए धन कमाया, दगाबाजी की। इसके अतिरिक्त उसने अन्य भी कई विवाहिता स्त्रियोंको भ्रष्ट किया था। अत;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

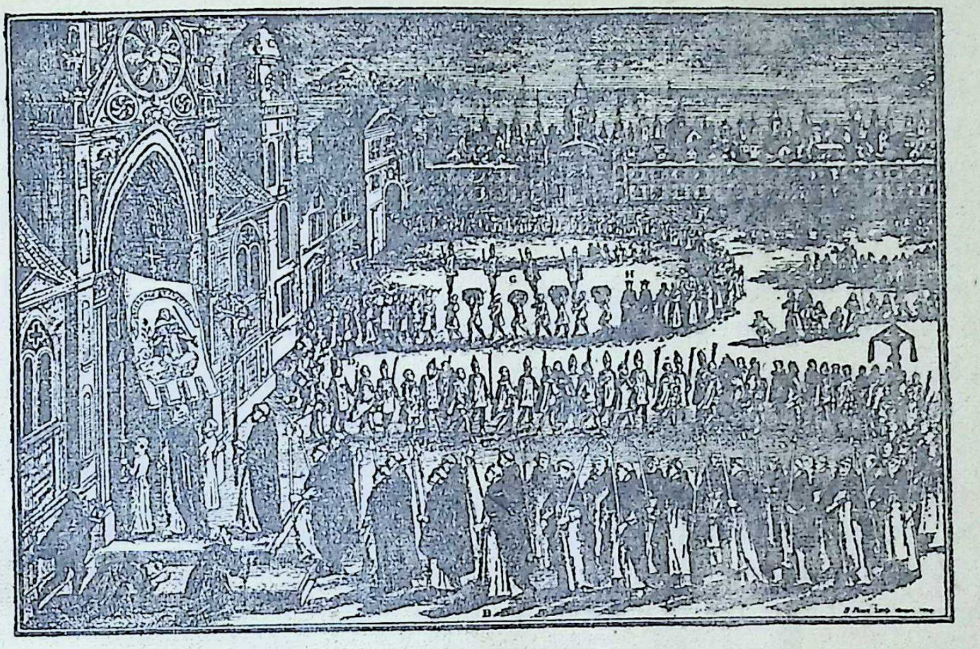

गोवा इंक्विजिशनके Auto de Fe नामक उत्सवमें जुलूसका दृश्य– आगेकी पंक्तिमें धर्माधिकारी, दूसरी पंक्तिमें हाथोंमें मशाल लेकर अपनी विशिष्ट पोशाकमें इंक्विजिशनके दुर्भाग्यशाली कैदी, तीसरी पंक्तिमें कैदखानेमें ही मरजानेवाले कैदियोंके पुतले और उसके पीछे उन मृतकोंकी हड्डियोंकी पेटियां उठाकर चलनेवाले नौकर।

अपनी स्त्रीके पाप पर परदा डालनेके लिए उसने निश्चय किया कि वह अब कहीं भी यात्रा पर न जाकर अपनी स्त्रीके साथ ही रहेगा। जब यह बात गवर्नरको मालूम हुई तो उसने सामदामके द्वारा विदालको भगानेकी चेष्टा की, पर जब वह न माना तो उसे धमकाया कि तू यात्रा पर जा नहीं तो तेरी सब जायदाद जब्त कराके तुझे नष्ट कर दूंगा। वह बेचारा बडे चक्करमें पडा। कभी उसकी इच्छा होती कि वह अपनी स्त्रीको ही गोली मार दे, या फिर यात्रा पर जाकर गवर्नरके सारे जहाजोंको नष्ट करके उसे दिवालिया बना दे। पर स्त्रीसे प्रेम होने व स्वभावसे धर्मभीरु होनेके कारण वह यह सब कुछ न कर सका। अन्तमें अपने कुछ मित्रोंकी सलाह पर तथा एक मित्रके यह कबूल करने पर कि वह उसकी स्त्री पर नजर रखेगा, वह फिर यात्राके लिए चल पडा।

देलोंको कैदमें डालनेका प्रयत्न

'देलों नामका एक फ्रेंच तरुण यहां (दमनमें) रहता था। वह १६६८ में La Force नामक जहाजसे एक सर्जनका सहायक होकर हिन्दुस्थान आया था। पर जहाजके मालिकके साथ खटपट होनेके कारण वह जहाजकी नौकरी छोड दमनमें ही स्थायी रूपसे बस गया था। वह हिन्दुस्थान भरमें सबसे कुशल डॉक्टर था। इसलिए पुर्तगाली समाजमें वह जल्दी ही मिल जुल गया। इसका लेटिन भाषा पर अधिकार था, इसलिए भी उसका मान अधिक था। लोग उसे अपने घर बुलानेमें गर्व अनुभव करते थे। एक फ्रेंच होनेके कारण विदालके घर भी उसका आना जाना था। वह उनके परिवारके एक सदस्यके समान ही हो गया था।

गवर्नरका इस घरसे अनैतिक सम्बन्ध था, इसलिए वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देलोंसे भी बहुत जलता था। उस पर विद्रालका विशेष प्रेम देखकर गवर्नरके मनमें हरदम यह विचार चलता था कि देलोंको किस प्रकार बन्दी बनाया जाए। गवर्नर यह जानता था कि देलों पुर्तगालियोंके साथ प्रायः धर्म सम्बन्धी वाद विवाद करता है, अतः गवर्नरने उसकी इस आदतका लाभ उसे बन्दी बनानेमें उठाया।

एक दिन गवर्नरने अपने लडकेके रक्तको निकलवानेके लिए डॉक्टरको अपने घर बुलाया। लडकेके हाथ पर उसने पहले ही सेण्ट अंथनीकी मूर्ति बांध दी थी। रक्त निकालनेके पूर्व डॉक्टरने उस मूर्तिको उतार देनेके लिए कहा ताकि आपरेशनमें बाधा न पडे। पर उस लडकेने माना नहीं और कहा कि यदि शस्त्रक्रियामेंको त्रुटि हो गई तो इस सेण्टकी कृपासे ठीक हो जाएगा।' डॉक्टरने कहा कि सेण्ट अंथनीका शस्त्र क्रियाके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध मानना विवेकहीनता ही है। इस बातको लेकर वाद विवाद बढा और अनजानेमें ही डॉक्टर बहुत कुछ बोल गया।

इस समयके लिए गवर्नरने कुछ गवाह पहलेसे तैयार कर रखे थे। उनमेंसे रेक्टर नामक पादरीने डॉक्टर पर आरोप लगाया। पर इस पादरी पर डॉक्टरने बडे उपकार किए थे। अतः जिससे डॉक्टरको पता न चले कि रेक्टरने उस पर आरोप लगाये हैं, इसलिए वह पादरी आरोप लगाकर एकदम गोवा भाग गया और अपने पीछे डॉक्टरको कैदखानेमें डलवानेकी सारी व्यवस्था कर गया। इस प्रकार डॉक्टर पकड कर कैदखानेमें बन्द कर दिया गया।

देलों और कारेकी कारावासमें भेंट

आबेकारे गवर्नरके पास गया, तो गवर्नरने उसे सलाह दी कि पादरी गोवासे आगया है और वह उससे जाकर मिले। वह पादरीसे जाकर मिला, बातचीत की, पर उसने अपनी बातचीतमें देलोंका प्रश्न ही नहीं उठाया। कारेको इंक्विजिशनके सदस्यके द्वारा ज्ञात हुआ कि एक फ्रेंच कैदखानेमें बन्द है। पर कारेने ऐसी बातें बनाईं कि मानों वह उस फ्रेंचको जानता ही न हो। पर जब उसका विशेष परिचय उसे दिया गया तब बोला 'मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, वह तो एक कट्टर रोमन कैथोलिक है। फ्रांससे चलते समय उसके पिताने मुझे पत्र दिया कि वह धर्मके अनुसार चले।' तब उस अधिकारीने कहा कि 'वह (कारे) जाकर डॉक्टरसे मिले और उसे सलाह दे कि वह धर्मके विरुद्ध न बोले। इसके आगे कारे लिखता है कि इसके आगे अधिकारी बोला— 'उसे (डॉक्टरको) अपने अपराधका दण्ड भोगनेके लिए हम शीघ्र ही गोवा भेजनेवाले हैं। वहां वह हाथमें मशाल लेकर चर्चमें जाकर नम्रतासे क्षमा मांगेगा, फिर गोवाके रास्तों पर वह पटका जाएगा। यह धर्म विरुद्ध बोलनेवालेके लिए सरलतम सजा है।'

मैं एक लडकेके साथ कारावासमें जाकर उससे मिला। मुझे सब तरहसे बात करनेकी छूट मिल चुकी थी। बहुत देर तक मैंने उससे बातें कीं। फ्रेंच भाषाका जाननेवाला वहां हमारे सिवाय और कोई न था, अतः हमने खुलकर बातें कीं। जब अन्य कैदियोंको पता चला कि मैं डॉक्टरको छुडाने आया हूं तो वे सब भागते हुए मेरे पास आए और बोले कि मैं डॉक्टरको न ले जाऊं। क्योंकि डॉक्टर उनका बडा मददगार था। दमनमें भी कई परिवार उसे बहुत मानते थे और कैदमें भी वे डॉक्टरकी कपडे आदिसे सहायता करते थे। इसकारण प्रतिदिन उसके पास इतना सामान आता था कि दूसरे कैदी भी उसका लाभ उठाते थे। उसे अपनी सजाकी भयंकरताका अनुमान नहीं था। वह मुझसे मिलकर बडा खुश हुआ। उसे पिताके लिए पत्र लिखनेकी छूट मिल गई थी अतः उसने पत्र लिखकर मुझे दे दिया'।

दमनकी जेल

देलों अपने इंक्विजिशनके वृत्तान्तमें लिखता है- दोना फ्रांसिस्क नामक स्त्रीके कारण मेरा जेलमें रहना आसान सा हो गया। वह मुझे अन्न भेजती थी और इतना भेजती थी कि उससे चार आदमियोंका पेट भर जाए। वह स्वयं अन्न तैय्यार करती थी। ऐसा भाग्य दूसरे कैदियोंका नहीं था। उनके भोजन पर कोई ध्यान नहीं देता था। यदि कोई आकर खिला देता तो खिला देता, नहीं तो नहीं। कइयोंको खानेके लिए भी नहीं मिलता था। मैं यथासम्भव उन्हें भी थोडा दे देता था। पर जो मेरे कमरेमें नहीं थे उनकी ऐसी दुरवस्था थी कि वे भूखसे व्याकुल अपना शौच तक खा जाते थे। इस प्रकार पचासमेंसे चालीस मनुष्य भूख न सह सकनेके कारण फांसी लगाकर आत्महत्या कर लेते थे।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोवा इंक्विजिशनका कार्यालय

'देलोंका वृत्तान्त बनावटी है' इस आशयकी दो किताबें फादर हेरास और फर्नांडिसने मुझे भेंट स्वरूप दी और कहा कि गोवा इंक्विजिशनके दफ्तरमें देलोंका केस नहीं मिलता। इस पर मैंने वहांके संशोधन विभागके अध्यक्ष श्री दो. ब्रागांस व दफ्तरके अध्यक्ष सर पांडुरंग पिसुर्लेकरसे पूछताछ की पर उन्होंने मना कर दिया। मैं गोवाके एक मुख्य पादरीसे भी मिला, उसने भी मना कर दिया। पर Minguel Vicente de Abreu के द्वारा पुर्तगाली भाषामें अनूदित देलोंकी पुस्तकमें इंक्विजिशनके दफ्तर विषयक जो पत्र व्यवहार वाइसराय और पुर्तगाल सरकारके बीचमें हुआ था, उसका थोडासा अंश मिलता है। और बाकी सब जला दिया ऐसा दीखता है।

गोवाके जेलसे यद्यपि डॉ. देलों छूट गया पर फिर अपराध लगाकर उसे लिस्बनके इंक्विजिशनके पास भेज दिया गया। पर बादमें उसे छूट मिल गई और फ्रांस जानेकी आज्ञा भी उसे मिल गई।

गोवा इंक्विजिशनका दफ्तर यदि जला भी दिया हो तो लिस्बन इंक्विजिशनके दफ्तरमें देलोंका कैदीके रूपमें नामाङ्कन अभी भी है, ऐसा Antonio Baias द्वारा दो भागोंमें लिखित 'इंक्विजिशनके इतिहास' से ज्ञात होता है। लिस्बन इंक्विजिशनके क्रमांक १५०२८ दफ्तरमें १२ जनवरी १६७६ के धर्मोत्सवकी जो सूची दी है उसमें क्रमांक ७२ तथा २३ वर्षकी आयुके एक कैदीका वर्णन इस तरह किया है—

Carlos Delon cirurgiao francez natural d' Aguede Reino de Franca, assistente neste estado solteirs, filho de luiz Delon por herege. 5 anos para as gale's de portugale para sempre do estado de India.

१५६१ से लेकर १७७४ तक गोवा इंक्विजिशनमें १६१७२ मुकद्दमें आए ऐसा आंतोनियु बायांव लिखता है। इसीमें देलोंका भी मुकदमा था ऐसा वह कहता है। देलोंके गोवा इंक्विजिशनका निर्देश योरोपके अनेक ग्रंथकारोंने अपने ग्रंथोंमें किया है। पादरी वियैरकी तीसरी शताब्दीके अवसर पर येवोरके आर्क बिशपने १८९७ में मुख्य चर्चमें जो कुछ कहा उसे गोवा हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश डॉ. आंतोनियु द नोरोंजने गोवा सरकार द्वारा प्रकाशित A India Portuguese (१९२३) में इस प्रकार लिखा है।

'यद्यपि इंक्विजिशनका न्याय मन्दिर सभी जगह बदनाम है, पर गोवाके 'पवित्र गृह' नामका इंक्विजिशन जैसा बदनाम और कोई नहीं है। इंक्विजिटर अपने वशमें न आनेवाली स्त्रियोंको जबरन पकड कर कैद कर देते थे फिर अपनी वासना तृप्त करके पाखण्डी कहकर उन्हें जला देते थे।'

एक पोर्तुगीज धर्माधिकारीके इन शब्दों पर भारतके नये ईसाइयों द्वारा परदा डालनेका प्रयास एक आश्चर्य ही है। वे केवल हिन्दु और मुसलमानों पर अत्याचार करते थे ऐसी बात नहीं, अपने भाइयोंको भी उन्होंने नहीं छोडा। उनके डरसे कई ईसाई परिवार गोवा तथा पुर्तगाली देशोंसे भाग गए। कोचीन, मंगलूर, सांवतवाडी, कारवार, बेलगांवमें आज जो कोंकणी बोलनेवाले ईसाई परिवार हैं वे गोवासे भागे हुओंमेंसे हैं। पर इतिहासकारोंने यह कहकर कि मराठोंके आक्रमणके कारण उन्हें भागना पडा, उन कुकृत्यों पर परदा डालनेकी कोशिश की।

ईसाके नाम पर हिन्दुस्थानमें व अन्यत्र होनेवाले अत्याचारोंके लिए कोई भी समझदार ईसाको जिम्मेदार नहीं ठहरा सकता। पर जो इन कृत्योंका समर्थन करते हैं वे ही अपनी अज्ञानतासे ईसाको जबरन जिम्मेदार बनाते हैं।

सुखमार्ग

[मासिक पत्र]

सुख, सम्पत्ति पानेके लिये धार्मिक, सामाजिक, वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-प्रोत ३६ वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढें। यह बडे २ विद्वानों के लेख, लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं प्रश्न उत्तर, और समाचार मुफ्त छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १), नमूना मुफ्त।

पता— सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ। (यू. पी.)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ॐ

सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला इन्द्र

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

वेदमें इन्द्र विद्युद्देवता है, विद्युत्का वर्णन ही इन्द्रका वर्णन है। पर यह वर्णन ऐसे ढंगसे किया है कि वह वर्णन युद्धमंत्रीका वर्णन है ऐसा स्पष्ट दीखता है। गत लेखोंमें इस विषयका बहुतसा वर्णन आया है, अब इसमें भी उसके अन्य गुण बताते हैं।

मानवोंका हित करनेवाला

इन्द्र मानवोंका हित करनेका कार्य करता है देखिये—

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्
त्वं ऋभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ
यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ऋ. १।६३।३

हे इन्द्र ! (त्वं सत्यः) तू सच्चा है, (धृष्णुः) तू शूर है (एतान्) इन शत्रुओंको हिलाता है, (त्वं ऋभुक्षाः) तू कारीगरोंका पालन करता है, (नर्यः) मानवोंका हित करनेवाला है (त्वं षाट्) तू शत्रुका पराभव करनेवाला है, तूने युद्धमें (शुष्णं) शुष्णको मारा और (आणौ) दूसरे युद्धमें (द्युमते यूने कुत्साय) तेजस्वी तरुण कुत्सके हितके लिये शुष्णको (सचा अहन्) साथ मारा।

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः
श्रोता हवं गृणत ऊर्व्यूतिः।
वसुः शंसो नरां कारुधाया
वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ ऋ. ६।२४।२

' (ततुरिः) त्वरासे कार्य करनेवाला, वीर (नर्यः) जनताका हित करनेवाला (विचेताः) विशेष ज्ञानी, (श्रोता) भक्तोंका भाषण सुननेवाला (ऊर्वी ऊतिः) भक्तोंका उत्तम रक्षण करनेवाला (वसुः) लोगोंको बसानेवाला (शंसः) प्रशंसनीय (नरां कारुधायाः) जनतामेंसे कारीगरोंको आधार देनेवाला (वाजी) बलवान् (विदथे स्तुतः) यज्ञमें स्तुति सुननेपर (वाजं दाति) धन देता है। '

तथा—

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान्
चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिः
त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ ७।२०।१

(उग्रः वीर्याय जज्ञे) उग्र वीर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये उत्पन्न हुआ है, (स्वधावान्) वह अपनी धारणा शक्तिसे युक्त है। (नर्यः) जनताका हित वह करता है (यत् करिष्यन्) वह जो करना चाहता है (अपः चक्रि) वह कार्य कर छोडता है, (जग्मिः) युद्धमें जानेवाला, (युवा) तरुण, (अवोभिः नृषदनं त्राता) संरक्षणोंसे मानवोंके यज्ञगृहोंका रक्षण करता है, वह (महः एनसः नः त्राता) बडे पापसे हमारा रक्षण करे।

इन मंत्रोंमें ' नर्य ' पद है जिसका अर्थ सब जनोंका हित करनेवाला इन्द्र है।

इन्द्र नेता है

इन्द्र पुरुषार्थी नेता वीर है इस विषयके मंत्र देखिये—

शतक्रतुं अर्णवं शाकिनं नरं
गिरो म इन्द्रं उपयन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिं अप्तुरम्
धामसाचं अभिषाचं स्वर्विदम् ॥ ऋ. ३।५१।२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(शतक्रतुं) सेंकडों कार्य करनेवाला, (अर्णवं) विशाल, (शाकिनं) शक्तिमान् (नरं) नेता, (वाजसानिं) अन्नके दाता (पूः-भिदं) शत्रुके किले तोडनेवाला, (तूर्णि) विजयशाली, (अप्तुरं) त्वरासे कार्य करनेवाला (धाम-साचं) स्थानपर स्थिर रहनेवाला (अभि-षाचं) सब ओर-के शत्रुका पराभव करनेवाला, (स्वर्विदं) आत्मप्रकाशी इन्द्रकी मेरी वाणी स्तुति करती है।

तथा—

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम्।

ऋ. ६।४४।४

'(त्यं उ अप्रहणं) उस प्रहार न करनेवाले (शवसः पतिं) बलके स्वामी (विश्वा-साहं) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले (मंहिष्ठं नरं) महान् नेता (विश्व-चर्षणिं) सब लोगोंके हित कर्ता (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्रकी स्तुति करता है ।'

तथा—

प्र सम्राजं चर्षणीनां इन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ ऋ. ८।१६।१

हे स्तोता गण ! (चर्षणीनां सम्राजं) जनोंके सम्राट् (नरं) नेता (मंहिष्ठं नृषाहं) बडा तथा शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है उसकी (गीर्भिः प्र नव्यं) अपनी वाणीसे स्तुति करो।

इन्द्र नेता है, वह महान् शूर है, उसकी स्तुति करनी योग्य है। ऐसा वह स्तुत्य तथा अत्यंत प्रशंसनीय नेता है।

इन्द्रके सामर्थ्य

इन्द्रके सामर्थ्यके विषयमें वेदके अन्दर बहुत वर्णन हैं। इन्द्रके सब सूक्तोंमें इन्द्रके सामर्थ्यका ही वर्णन है। इन्द्रकी सब स्तुति उसके सामर्थ्यका ही वर्णन करती है देखिये—

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः
स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः
पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि सः ॥ ऋ. १।५४।३

(दिवे बृहते) तेजस्वी बडे इन्द्रके लिये (शूष्यं वचः अर्च) सुख कारक स्तोत्र कहो। (यस्य धृषतः) जिस धैर्यवान्का (धृषत् मनः स्वक्षत्रं) धैर्ययुक्त मन निजी क्षात्र तेजसे युक्त है। (बृहत्-श्रवा) बडा कीर्तिमान् (असुरः) बलवान् (बर्हणा कृतः) मजबूत तैयार किया गया तथा (हरिभ्यां पुरः) आगे घोडे जोते गये हैं जिसके ऐसा (सः वृषभः रथः) वह मजबूत रथ है। और देखिये—

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा
नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नः तरुत्रः
त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ ऋ. १।१७४।१

(ये च देवाः) जो देव हैं, हे इन्द्र ! (त्वं राजा) उनका तू राजा है। (रक्ष) तू हमारा रक्षण कर, (त्वं असुरः) तू बलवान् है अतः (अस्मान् नॄन् पाहि) हम सब मानवोंका रक्षण कर, (त्वं सत्पतिः) तू सच्चा रक्षक हो (त्वं मघवा नः तरुत्रः) तू धनवान् है और हमारा संरक्षक है। (त्वं सत्यः) तू सत्य कार्य करनेवाला, (वसवानः) सबको बसानेवाला और (सहो-दाः) बल देनेवाला है।

इसमें इन्द्रके सामर्थ्यका वर्णन है तथा और देखिये—

पतिर्बभूथासमो जनानां
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ऋ. ६।३६।४

(जनानां असमः पतिः) लोगोंका एकही रक्षक है वैसा दूसरा कोई नहीं है। सब भुवनोंका तू ही एक राजा है।

तथा—

त्वं हि शश्वतीनां पतिः राजा विशामसि।

ऋ. ८।९५।३

हे इन्द्र ! तू सदा टिकनेवाले प्रजाजनोंका राजा है।

तथा—

यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः।

ऋ. ६।४४।५

(तुरस्य राधसः पतिं) त्वरासे कार्य करनेसे जो सिद्धि मिलती है उसका पति इन्द्र है (गिरः तं वर्धयन्ति) हमारी वाणियां उस इन्द्रका वर्णन करती हैं।

इस तरह इन्द्रकी महती शक्तिका वर्णन वेदमें है। यह वर्णन अनेक प्रकारोंसे किया है जिसमेंसे अत्यंत अल्पसे उदाहरण हमने यहां दिये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४ सेनाके गणोंका स्वामी इन्द्र

इन्द्र मरुतोंके गणोंका स्वामी है। इस विषयमें वेद-मंत्रमें कहा है—

निषुसीद गणपते गणेषु
त्वां आहुः विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किंचनारे
महामर्कं मघवन् चित्रमर्च ॥ ऋ. १०।११२।९

हे (गणपते) सैनिकोंके गणोंके स्वामी! (गणेषु निषुसीद) गणोंमें तू बैठ। (त्वां कवीनां विप्रतमं आहुः) तुझे ज्ञानियोंमें अधिक ज्ञानी कहते हैं। (त्वत् ऋते) तेरी सहायताके बिना (किंचन न क्रियते) कोई कर्म किया नहीं जाता। हे (मघवन्) धनवान्! (महां अर्कं) तेरा बडा स्तोत्र हम करते हैं, (चित्रं अर्च) इस विलक्षण स्तोत्रको ध्यानमें धारण कर।

इस प्रकार ज्ञानियोंमें ज्ञानी इन्द्र सैनिकोंके गणोंमें बैठता है, सब प्रकारके कार्य उन सैनिकोंसे कराता है, कार्य योग्य प्रकारसे हुए या नहीं वह देखता है। इस प्रकार यह गणोंका स्वामी इन्द्र सब कार्य कराता है।

युद्धमें प्रवीण

इन्द्र युद्धमें तेजस्वी है, प्रवीण है इस विषयमें यह प्रमाण है—

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराजे
उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणि
इन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ ऋ. ३।४६।१

हे इन्द्र! (युध्मस्य) लडनेमें प्रवीण, (वृषभस्य) बलवान्, (स्वराजः) स्वयं प्रकाश, उग्र, (यूनः) तरुण (स्थविरस्य) वृद्ध होनेपर भी जवान, (घृष्वेः) शत्रुनाशक (अजूर्यतः) जरा रहित, (वज्रिणः) वज्रधारी (श्रुतस्य) प्रख्यात ऐसे तेरे (महतः महानि वीर्याणि) अनंत और बडे पराक्रम हैं। तथा—

योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना
विश्वा जातानि मज्मना।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति
यं गोतमा अजीजनन् ॥ ऋ. ८।८८।४

हे इन्द्र! तू (क्रत्वा) कर्तृत्वसे (शवसा) बलसे और (दंसना) प्रयत्नसे (योद्धा असि) योद्धा है। (मज्मना) अपने पुरुषार्थसे तू (विश्वा जातानि) सब प्रकारके शत्रुओंका पराभव करता है। (अयं अर्कः) यह उपासक (त्वा ऊतये आववर्तति) तुझे अपने संरक्षणके लिये अपने पास बुलाता है (यं गोतमाः अजीजनन्) जिसको गौतमोंने उत्पन्न किया है।

इन्द्र युद्धमें कुशल है और पुरुषार्थी है यह इससे सिद्ध होता है।

युद्धोंमें तेजस्विता

इन्द्र अपनी तेजस्विता युद्धोंमें बताता है, इस विषयके मंत्र देखिये—

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधाऽमित्रान् ॥ ऋ. ८।१६।१०

(वस्यः अच्छ प्रणेतारं) धनका दान अच्छी तरह करनेवाले, (समत्सु) युद्धोंमें (ज्योतिः कर्तारं) अपना प्रकाश करनेवाले (युधा) युद्धसे (अमित्रान् सासह्वांसं) शत्रुओंको पराभूत करनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं।

इन्द्र युद्धोंमें अपने कर्तव्य कर्म करनेसे अपना प्रकाश फैलाता है। सब लोग इसके इस कर्तव्यके प्रकाशको देखते हैं और आनंदित होते हैं।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारं अप्रहितम्
आशुं जेतारं रथीतमं अतूर्तं तुग्र्यावृधम्।
इष्कर्तारं अनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम्
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवां वसूजुवम् ॥
ऋ. ८।९९।७

हे उपासको! (अ-जरं) जरा रहित, (प्र-हेतारं) शत्रुपर शस्त्रके आघात करनेवाले (अ-प्रविहितं) पीछे न हटनेवाले (आशुं जेतारं) शीघ्र विजय करनेवाले (रथी-तमं) रथियोंमें उत्तम रथी, (अ-तूर्तं) किसी भी शत्रुसे हिंसित न होनेवाले (तुग्र्यावृधं) उदकको बढानेवाले, (इष्कर्तारं) सुशोभित करनेवाले (अ-निष्कृतं) जिसको कोई शोभित कर नहीं सकता, (सहस्कृतं) बलसे कार्य करनेवाले (शतं ऊतिं) सेंकडों रक्षणोंसे युक्त (शतक्रतुं) सेंकडों कर्म करनेवाले (समानं) समान भावसे सबके साथ बर्ताव करनेवाले (वसवां) बसानेवाले (वसु-जुवं)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन देनेवाले इन्द्रको (अवसे हवामहे) अपने संरक्षणके लिये बुलाते हैं ।

ये इन्द्रके गुण हैं । उपासक इन गुणोंका विचार करे और इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करे । योद्धामें कौनसे गुण होने चाहिये वे गुण ये हैं । उत्तम योद्धा इन शुभ गुणोंसे युक्त होते हैं । युद्ध मंत्री इन गुणोंसे युक्त होने चाहिये ।

शस्त्रोंसे सहायता करनेवाला

इन्द्र स्वयं उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त रहता है और अपने संरक्षणमें आये भक्तोंकी सहायताके लिये ये शस्त्र भी देता है । देखिये—

सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् । ऋ. २।१९।४

(सद्यः) तत्काल (यः) जो इन्द्र (नृभ्यः) वीरोंके लिये (अतसाय्यो भूत्) शस्त्रास्त्रकी सहायता देता है । और उससे मानवोंका संरक्षण करता है ।

युद्धकलामें निपुण इन्द्र

जब युद्ध करना आवश्यक होता है, तब वह कुशलताके साथ ही करना चाहिये । अन्यथा सब साधन होनेपर भी पराभव होनेमें कोई संदेह नहीं होगा । इन्द्रके विषयमें यह सब जानते हैं कि वह युद्धकलामें निपुण है अतः उसका कभी पराभव नहीं होता ।

यदाजिं याति आजिकृत् इन्द्रः स्वश्वयुः उप ।
रथीतमो रथीनाम् ॥ ऋ. ८।४५।१

यह इन्द्र (रथीनां रथीतमः) रथियोंमें उत्तम रथी वीर (आजि-कृत्) युद्ध करनेमें कुशल (सु-अश्व-युः) उत्तम घोडे अपने रथमें जोडकर (यत् आजिं उपयाति) जब युद्धमें जाता है ।

यह इन्द्र रथी वीरोंमें उत्तम रथी वीर है, यह युद्ध करनेमें तत्पर और कुशल है । उत्तम घोडोंको अपने रथमें जोडता है और ऐसे रथमें बैठकर युद्धमें जाता है ।

रणं कृधि रणकृत् सत्यशुष्मा
ऽभक्ते चिदाभजा राये अस्मान् ॥
ऋ. १०।११२।१०

हे इन्द्र ! तू (सत्यशुष्मा रणकृत्) सच्चा बलवान् है और युद्ध करनेमें कुशल है । (अ भक्ते चित्) अयोग्य स्थानमें भी (अस्मान् राये आभज) हमें धन भरपूर दे दो ।

स मन्युमी समदनस्य कर्ता ॥ ऋ. १।१००।६

(सः) वह इन्द्र (मन्युमी) शत्रुके उत्साहका नाश करनेवाला (समदनस्य कर्ता) युद्ध करनेमें प्रवीण है । तथा—

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं
कृधि प्रजासु आभगम् ॥ ऋ. ८।५३ ।

(आजितुरं) युद्धमें त्वरासे शत्रुका नाश करनेवाला (सत्पतिं) उत्तम पालन करनेवाला (विश्व-चर्षणिं) सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला इन्द्र है वह (प्रजासु आभगं कृधि) प्रजामें भाग्यवान् है ।

इन्द्र ' सत्पति ' युद्ध शास्त्रका उत्तम अधिपति है इतनी उसकी युद्ध कलामें निपुणता है ।

आजिपते नृपते त्वं इद्धि नो
वाज आवक्षि सुक्रतो ॥ ऋ. ८।५४।६

हे (नृपते) मानवोंके या नेताओंके स्वामिन् (आजि पते) युद्धके स्वामिन् हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं नः वाजे आवक्षि) तू हमारे युद्धमें मुख्य नेता बन । इन्द्र युद्धका शास्त्र जाननेवाला है इसलिये वह युद्धमें मुख्य अधिपति हो सकता है, तथा और देखिये—

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहः
च्यवनो युध्मो अनुजोषं उक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिः विक्षु आरितः
इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वार्या ॥ ऋ. २।२१।३

(सत्रा-साहः) सब शत्रुओंका एक साथ पराभव करनेवाला (जन-भक्षः) शत्रुके वीरोंका नाश करनेवाला (जनं-सहः) शत्रुके वीरोंका पराभव करनेवाला, (च्यवनः) शत्रुवीरोंको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, (युध्मः) युद्ध करनेमें कुशल, (अनुजोषं उक्षितः) जोशसे प्रशंसाके योग्य (वृतं चयः) आवरक शत्रुको हिलानेवाला, (सहुरिः) शत्रुका पराभव करनेवाला (विक्षु आरितः) प्रजाजनोंमें प्रशंसित (इन्द्रस्य वार्या कृतानि प्रवोचं) ऐसे इन्द्रके किये श्रेष्ठ पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं ।

इसमें प्रत्येक पद इन्द्रके पराक्रमका द्योतक है, तथा और देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशुः शिशानो वृषभो न भीमः
घनाघनः क्षोभणः चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिषः एक वीरः ।
शतं सेना अजयत् साकं इन्द्रः ॥ ऋ. १०।१०३।१

(आशुः) सत्वर कार्य करनेवाला (शिशानः) तीक्ष्ण (वृषभः न भीमः) बैलके समान भयंकर, (घनाघनः) शत्रु पर आघात करनेवाला (चर्षणीनां क्षोभणः) शत्रुके वीरोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला (संक्रन्दनः) शत्रुके साथ पुकार पुकार कर बोलनेवाला (अ-निमिषः) स्तब्ध न रहनेवाला, (एक- वीरः) ऐसा अद्वितीय वीर इन्द्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) सैंकडों सेनाओंका साथ साथ पराभव करता है ।

संक्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना
युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वम्
युधो नरः इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ऋ. १०।१०३।२

(संक्रन्दनेन) पुकार पुकार कर बोलनेवाले (अनिमिषेण) स्तब्ध न रहनेवाले (जिष्णुना) विजयशाली (युत्कारेण) तेजस्विताके साथ रहनेवाले (दुश्च्यवनेन धृष्णुना) अपने स्थानसे न हटनेवाले धैर्यशाली (इन्द्रेण) इन्द्रके साथ रहकर (तत् जयत) उस युद्धको जीतो । हे (युधः नरः) युद्ध करनेवाले नेता वीरो ! (इषुहस्तेन वृष्णा) बाण हाथमें लेकर युद्ध करनेवाले बलवान् वीर इन्द्रके साथ रहकर (तत् सहध्वं) उस युद्धमें विजय प्राप्त करो ।

इन्द्रके ये विशेषण उसका युद्ध करनेका सामर्थ्य बता रहे हैं ।

युद्धके लिये संस्कार संपन्नता

युद्धमें जाकर शौर्य दिखानेके लिये एक विशेष प्रकारकी संस्कार संपन्नता चाहिये । इस विषयमें कहा है—

य उग्रः सन् अनिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुः मघवा शृणवत् हवं न इन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ऋ. ८।३३।९

(यः उग्रः सन्) जो स्वयं उग्रवीर होता हुआ (अनिष्टृतः) सदा अपराजित रहता है और (रणाय संस्कृतः स्थिरः) जो युद्धके लिये आवश्यक संस्कारोंसे संस्कारित हुआ है अतः वह युद्धमें जाकर स्थिर रहता है, वह धनवान् इन्द्र (स्तोतुः हवं शृणवत्) स्तोताकी प्रार्थना सुनता है तो वह (योषति न आगमत्) दूसरी ओर जाता नहीं, अर्थात् निश्चयसे वह उसके पास ही पहुंचता है ।

युद्धके संस्कारोंसे जो संस्कार संपन्न होता है, उसका पराक्रम बडा महान् होता है । अतः वीरोंको युद्धके संस्कारोंसे संपन्न करना चाहिये ।

शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला

इन्द्र शत्रुका पराभव करता है और शत्रुकी नगरियोंको तथा शत्रुके किलोंको तोडता है । देखिये—

इन्द्र दर्ता पुरां असि । ऋ. १।९८।६
पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः । ऋ. १।१३०।१०

हे इन्द्र ! तू (पुरां दर्ता) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला है । हे (पुरां दर्तः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्र ! तू (शग्मैः पायुभिः पाहि) सुखकारक संरक्षणोंसे हमारी सुरक्षा कर ।

पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणं वीरं दानौकसं वन्दध्यै ।
ऋ. १।६१।५

(दान-ओकसं) दानके घरके समान (गूर्त-श्रवसं) जिसका यश गाया जाता है (पुरां दर्माणं वीरं वन्दध्यै) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले वीर इन्द्रको हम प्रणाम करते हैं ।

अधा वृत्राणि जिघ्नते पुरंदर । ऋ. १।१०२।७

हे (पुरंदर) शत्रुके किलोंको तोडनेवाले इन्द्र ! तू घेरनेवाले सब शत्रुओंको मारता है ।

इन्द्रः पूर्भिद् आतीरद् दासं । ऋ. ३।३४।१

इन्द्र शत्रुकी नगरियोंको तोडता है और दासोंको जीतता है ।

पूर्भित्तमं मघवन् इन्द्रं गोविदं ईशानं राय ईमहे ।
ऋ. ८।५३।१

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (पूः-भित्तमं) शत्रुके नगरोंको तोडनेवालोंमें श्रेष्ठ ! (गो-विदं ईशानं इन्द्रं) गौओंको प्राप्त करनेवाले ईश्वर इन्द्रकी (राये ईमहे) धनके लिये हम प्रार्थना करते हैं ।

शत्रुकी पुरियोंको तोडना, उन पर कब्जा करना यह युद्धके बिना नहीं हो सकता । युद्धमें विजय प्राप्त हो, शत्रुका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण पराभव हो, तब उनकी नगरी टूट सकती है। 'पुरी' सबसे बडी होती है, ग्राम, पत्तन, नगरी, पुरी, ये गांवोंके क्रम हैं। 'ग्राम' सबसे छोटा और 'पुरी' सबसे बडी। सब साधनोंसे जो परिपूर्ण होती है वह 'पुरी' कहलाती है। ऐसे शत्रुकी पुरियोंका तोडना और उन पर कब्जा करना अत्यंत कठिन कार्य है। यह कार्य इन्द्र करता था। इससे इन्द्रके युद्ध कौशल्यका पता लग सकता है।

युद्धमें आगे रहनेवाला

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन्।
ऋ. ७।३१।६

हे (वृत्र-हन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र! (त्वं वर्म असि) तू कवच है, (स-प्रथः पुरोयोधः च) विशाल रीतिसे युद्ध करनेवाला और अग्रेसर होकर युद्ध करनेवाला तू है।

युद्धमें पीछे रहना नहीं, परंतु सबसे आगे इन्द्र रहता है, इससे अनुयायियोंका भी उत्साह बढता है और वे भी उत्तम युद्ध करने लगते हैं। अपना स्वामी युद्धमें आगे खडा है यह देखकर कौनसा अनुयायी ऐसा होगा कि जो पीछे रहकर युद्धसे दूर रहनेका यत्न करेगा। इस दृष्टीसे इन्द्रका आगे रहना उसके बडप्पनका सूचक है।

कपट युद्धमें प्रवीण

इन्द्र कपट युद्धमें भी प्रवीण है। असुर कपटसे युद्ध करते थे, उनके साथ इन्द्र भी कपट युद्ध करता था।

रूपं रूपं मघवा बोभवीति
मायाः कृण्वान तन्वं परि स्वाम् ॥ ऋ. ३।५३।८

(मघवा) धनवान् इन्द्र (स्वां तन्वं परि) अपने शरीर पर (मायाः कृण्वानः) कौशल्यसे (रूपं रूपं बोभवीति) अनेक रूपोंको धारण करता है। अनेक कपटरूप धारण करके शत्रुको फंसाता है और इस रीतिसे शत्रुओंको मारता है।

सं सहते पुरुमायो जिहीते। ऋ. ३।५१।४

(पुरु-मायः) अनेक कपट प्रयोग करके (सं सहते) वह सम्यक् रीतिसे शत्रुको पराभूत करता है और (जिहीते) शत्रुको दूर करता है।

नास्य शत्रुः न प्रतिमानं अस्ति
न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य शंयोः। ऋ. ६।१८।१२
पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम्। ऋ. ६।२१।२

(न अस्य शत्रुः) इसका कोई शत्रु नहीं है, (न प्रतिमानं अस्ति) न इसके समान कोई है। (पुरुमायस्य शंयोः) बहुत कुशल और शान्ति सुख देनेवाले इन्द्रको (न प्रतिष्ठिः) आश्रय देनेवाला भी कोई नहीं।

(पुरुमायस्य) इस अनेक कौशल्यके कार्य करनेवालेका (महत्वं रिरिचे) महत्व बडा विस्तीर्ण है।

सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्। ऋ. ४।२२।१

(सत्यः) वह सत्य पराक्रमी है। (सत्वा) सामर्थ्यवान् है (पुरुमायः) बहुत कौशल्यके कार्य करनेवाला और (सहस्वान्) शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ है।

इस रीतिसे अनेकविध माया करनेवाले इन्द्रका वर्णन वेदमंत्र करते हैं जिससे उनके अद्भुत कौशल्यकी प्रतीति हो सकती है

शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला

इन्द्रकी विशेषता शत्रुसेनाके पूर्ण पराभव करनेमें दीखती है। कैसा भी शत्रु हो उसकी सेनाका नाश यह करता है; इस विषयमें देखिये—

यः ते मदः पृतनाषाड् अमृध्रः
तं न आभर शूशुवांसम्। ऋ. ४।१९।७

हे इन्द्र! (यः ते मदः) जो तेरा आनंद (पृतना-षाट्) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला (अ-मृध्रः) विनष्ट न होनेवाला है, (तं शूशुवांसं) उस उत्साह बढानेवाले हर्षको (नः आभर) हमें दे।

शत्रुसेनाका पराभव करनेमें जो उत्साह और आनंद रहता है, वह आनंद हमें मिले। अर्थात् इन्द्रके समान हम भी शत्रु सेनाको परास्त करनेका आनंद प्राप्त करें।

अषाळ्हं उग्रं पृतनासु सासहिं
यस्मिन् महि उरुज्रयः। ऋ. ८।७०।४

(अषाळ्हं उग्रं) शत्रुको पराजित करनेवाला उग्रवीर इन्द्र (पृतनासु सासहिं) शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाला है, (यस्मिन्) जिसमें (महीः उरुज्रयः) बडे यशके प्रसंग होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा महा पराक्रमी इन्द्र है। शत्रुकी सेना उसके सामने युद्ध नहीं कर सकती, पराभूत होती है, भाग जाती है अथवा विनष्ट होती है। इन्द्रका इतना पराक्रम है।

इन्द्र उत्तम सेनापति है

इन्द्र अपनी सेनाकी व्यवस्था उत्तम रखता है देखिये-

तं ईमहे इन्द्रं अस्य रायः
पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः॥ ऋ. ६।२२।३

(तं इन्द्रं ईमहे) उस इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, (पुरुवीरस्य) बहुत वीरोंके साथ रहनेवाले (नृवतः) बहुत नेताओंके साथ रहनेवाले और (पुरु-क्षोः) बहुत अन्नके साथ रहनेवाले इस इन्द्रके स्तोत्र गाते हैं।

इन्द्रके साथ बहुत वीर रहते हैं, बहुत नेता रहते हैं। हर एक वीरके साथ और नेताके साथ सेना भी रहती है। ऐसे सेनाके साथ रहनेवाले, वीरों और नेताओंके साथ इन्द्र रहता है और इतनी बडी सेनाका प्रबंध वह करता रहता है।

इन्द्रके साथ बडी सेना रहती है इसलिये बहुत अन्न भी उसके साथ रहना आवश्यक ही है, क्योंकि इतने सैनिकोंके भोजनके लिये थोडा अन्न नहीं लगेगा। अतः इन्द्र अपने साथ सब सैनिकोंके लिये आवश्यक अन्नका प्रबंध भी करता है।

उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री। ऋ. १।१०३।४

(वज्री) वज्र धारण करनेवाला इन्द्र (दस्यु-हत्याय) दुष्टोंका वध करनेके लिये (उप-प्रयन्) शत्रुके समीप जाता है।

अनानतं दमयन्तं पृतन्यून्। ऋ. १०।७४।५

(अन्-आनतं) किसीके सामने नम्र न होनेवाला (पृतन्यून् दमयन्तं) तथा शत्रुके सैनिकोंका दमन करनेवाला इन्द्र है।

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो
गम्भीर ऋष्वो असमष्ट-काव्यः। ऋ. २।२१।४

(अनानुदः) अनुपम वीर (वृषभः) वीर्यवान् बैलके समान बलवान् (दोधतः वधः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंका वध करनेवाला, गम्भीर (ऋष्वः) युद्धमें कुशल (असमष्ट-काव्यः) काव्य करनेवालोंको स्फूर्ति देनेवाला वीर इन्द्र है।

वृत्रखादो वलं रुजः। ऋ. ३।४५।२

इन्द्र वृत्रको मारता है और वलका नाश करता है।

विश्वासाहं अवसे। ऋ. ३।४७।५

(अवसे) अपने संरक्षणके लिये (विश्वासाहं) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले इन्द्रको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्। ऋ. ४।२०।८
वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः। ऋ. ५।३०।१

उत्तम शिक्षा देनेवाला और युद्धोंमें प्रहार करनेवाला इन्द्र है। (मघवा सर्वसेनः) धनवान् इन्द्र अपने सब सेनाको चलाता है।

असि हि वीर सेन्यः असि भूरि परा ददिः।
ऋ. १।८१।२

हे वीर इन्द्र ! तू (सेन्यः असि) सेनाके साथ रहता है तथा (भूरि परा ददिः असि) शत्रुको बहुत रीतिसे दूर करनेवाला है।

हन्ता पापस्य रक्षसः। ऋ. १।१२९।११

पापी राक्षसोंका मारनेवाला इन्द्र है। तथा देखिये—

सत्रासाहं दाधृषिं तुम्रं इन्द्रं
महां अपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजम्
दाता मघानि मघवा सुराधः॥ ऋ. ४।१७।८

(सत्रा-साहं) साथ साथ अनेक शत्रुओंको मारनेवाला, (दाधृषिं) शत्रुपर आक्रमण करनेवाला, (तुम्रं) शत्रुओंका नाश करनेवाला (महां अपारं) बडे अपार (यः वृत्रं हन्ता) जो वृत्रका हनन करनेवाला (वृषभं सुवज्रं) बलवान् और उत्तम वज्रको धारण करनेवाला (वाजं सनिता) जो अन्न देता है, (सुराधः मघवा मघानि दाता) उत्तम दान करनेवाला धनवान् इन्द्र धनोंको देता है।

विश्वासां तरुता पृतनानां
ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे॥ ऋ. ८।७०।१

(विश्वासां पृतनानां तरुता) सब शत्रुसेनाको जीतनेवाला (यः ज्येष्ठः वृत्रहा) जो श्रेष्ठ वीर शत्रुको मारता है, उसकी (गृणे) स्तुति करता हूं।

इस तरह इन्द्र सदा विजयी रहता है। कितना भी बडा शत्रु हो तो भी उसका नाश वह करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनहितार्थ ही वह सब करता है

इन्द्र जो करता है वह सब जनताके हितार्थ करता है इसलिये कहा है—

नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् । ऋ. १०।२९।१

(नर्यः) जनताका हित करनेवाला इन्द्र (नृणां नृतमः) सब मानवोंमें श्रेष्ठ मानव है और (क्षपावान्) रात्रीमें ही वह विश्राम करता है।

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतः
चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते
वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥ ऋ. १०।५०।२

(सः चित् नु) वह इन्द्र निश्चयसे (सख्या नर्यः) मित्र भावसे सार्वजनिक हित करनेवाला है, वह इन्द्र (इनः स्तुतः) नेता होनेसे स्तुतिके लिये योग्य है, (मावते नरे) मेरे जैसे मानवके लिये (इन्द्रः चर्कृत्यः) इन्द्र ही उपासनाके लिये योग्य है। (विश्वासु धूर्षु) सब युद्धोंमें (वाजं कृत्येषु) बलसे होनेवाले पराक्रमोंमें हे (शूर) शूर इन्द्र ! (वृत्रे) वृत्र वधके समय (वा अप्सु) अथवा जल प्राप्तिके लिये (अभि मन्दसे) चारों ओरसे तू ही प्रशंसनीय है।

यहां ' नर्यः ' पद सर्वजन हितके कार्य करता है यह भाव बता रहा है।

इन्द्र नेता है

इन्द्र नेता पुरुषार्थी वीर है, इस कारण सर्वत्र उसकी स्तुति होती है देखिये—

शतक्रतुं अर्णवं शाकिनं नरं
गिरो म इन्द्रं उपयन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णि अप्तुरं
धामसाचं अभिषाचं स्वर्विदम् ॥ ऋ. ३।५१।२

(शतक्रतुं) सैंकडों कर्म करनेवाले (अर्णवं) सागरके समान विशाल, (शाकिनं) सामर्थ्य युक्त (नरं) नेता (इन्द्रं) इन्द्रके प्रति (विश्वतः मे गिरः उपयन्ति) चारों ओरसे मेरी वाणियां पहुंचती हैं। वह इन्द्र (वाजसनिं) अन्न तथा बल देता है (पूर्भिदं) शत्रुकी नगरियोंको तोडता है, (तूर्णि) विजयी होता है (अप्तुरं) त्वरासे कार्य करनेवाला (धामसाचं) स्थानपर रहनेवाला (अभि षाचं) सर्वतो परि शत्रुका पराभव करनेवाला (स्वर्विदं) आत्म प्रकाशसे युक्त है उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं।

इन्द्रं इत् यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।
ऋ. ८।४०।३

इन्द्रका ही हम यजन करते हैं जो इन्द्र (शविष्ठं) बलवान् (नृणां नरं) मानवोंमें नेतृत्वका कार्य करता है।

इसमें ' नृणां नरं ' पद विशेष महत्वके हैं। ' नेताओंमें श्रेष्ठ नेता ' यह उनका अर्थ है।

इन्द्रका सामर्थ्य

' असुर्यं ' का अर्थ बल और सामर्थ्य है। असुर इस सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध हैं। वैसा ही सामर्थ्य इन्द्रमें है, देखिये—

चिकितुषे असुर्याय मन्म । ऋ. ४।१६।२

(चिकितुषे) ज्ञानी और (असुर्याय मन्म) सामर्थ्यवान्के लिये यह स्तोत्र है।

महत् तद् वृष्णो असुरस्य नाम । ऋ. ३।३८।४

(वृष्णः असुरस्य) बलवान् और सामर्थ्यवान् इन्द्रका यश बडा हुआ है।

तमुत्वा नूनं असुर प्रचेतसं
राधो भागमिव ईमहे ॥ ८।९०।६

हे (असुर) बलवान् इन्द्र ! (त्वा प्रचेतसं) तुझ बुद्धिमान्के पास (राधः भागं ईमहे) धनका भाग हम मांगते हैं।

चत्वारि ते असुर्याणि नाम
अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ॥ ऋ. १०।५४।४

(ते महिषस्य) तुझ बलवान् इन्द्रके (चत्वारि असुर्याणि) चार प्रकारके सामर्थ्य (अदाभ्यानि सन्ति) न दबनेवाले हैं।

इस प्रकार इन्द्रके सामर्थ्यके वर्णन वेद मंत्रोंमें आये हैं।

सेनाके गणोंका स्वामी इन्द्र

युद्ध होता है उस समय इन्द्रका मरुद्वीरोंका सैन्य गणशः लडता है। इन्द्र युद्धमें रहा तो उसके साथ मरुतोंको गण होंगे और वह युद्ध गणशः ही होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इवं त इन्द्र महिमा व्यानट्
ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम्।
आ यद् वज्रं दधिषे हस्त उग्र
घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः॥
ऋ. ७।२८।२

हे इन्द्र! (ते महिमा व्यानट्) तेरी महिमा तब फैलती है जब हे (शवसिन्) बलवान् उग्रवीर! (ऋषीणां ब्रह्म पासि) ऋषियोंके स्तोत्रका तू रक्षण करता है। हे (उग्र) उग्रवीर! (यद् वज्रं हस्ते आदधिषे) जब तू वज्रको हाथमें धारण करता है तब (घोरः सन्) तू पहिले घोर होता हुआ (क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठ) अपने पराक्रमसे शत्रुके लिये असह्य पराक्रमी बनता है।

यहां कहा है कि इन्द्र जब अपने हाथमें वज्र धारण करता है तब वह असह्य पराक्रम करता है।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो
रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुः ऊतयः।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा
भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः॥ ऋ. १।५२।५

(इन्द्रः वज्री) वज्रधारी इन्द्रने जब (अन्धसा धृषमाणः) सोम पीकर बलशाली होकर (त्रितः इव) त्रितके समान (वलस्य परिधीः भिनत्) बलके दुर्गतोड दिये, तब (प्रवणः सस्रुः) नदियां बहती हैं उस तरह (ऊतयः) मरुतोंकी रक्षण शक्तियां (रघ्वीः इव प्रवणः सस्रुः) प्रवाहित होनेवाली नदियोंकी तरह शत्रुपर फैल गईं। (अस्य युध्यतः) इसके युद्ध करनेके समय (मदे) आनंदसे (स्व वृष्टिं अभि) अपनी वृष्टी होनेके समय जैसी नदियां फैलती हैं, उस तरह मरुतोंके गणोंकी शक्तियां शत्रुपर फैलीं।

इन्द्रने वज्र धारण करके बलके किले तोड दिये, तब इन्द्रके वीर मरुद्गणकी संरक्षण शक्तियां और युद्ध करनेकी शक्तियां शत्रुपर ऐसी फैल गयीं, जैसी वृष्टीके समय नदियां फैलतीं हैं।

इन्द्रकी युद्धोंमें तेजस्विता

इन्द्र युद्ध करता है और ऐसा युद्ध करता है कि उसके साथ कोई दूसरा शत्रुका योद्धा ठहर नहीं सकता। वह युद्धमें अपनी तेजस्विता बताता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधाऽमित्रान्॥ ऋ. ८।१६।१०

(वस्यः अच्छ प्रणेतारं) धन अच्छी तरह देनेवाला, (समत्सु ज्योतिः कर्तारं) युद्धोंमें अपनी तेजस्विता प्रकट करनेवाला और (युधा अमित्रान् सासह्वांसं) युद्धसे शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है।

'समत्सुज्योतिः कर्तारं' अनेक युद्धोंमें अपनी तेजस्विता दिखानेवाला इन्द्र है। इस कारण उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती रहती है।

इन्द्र युवा है

इन्द्रकी आयु कितनी भी हुई तो भी वह युवा जैसा सब कार्य करता है, इस कारण इन्द्रको जरारहित तरुण कहते हैं—

यजाम इन्नमसा वृद्धं इन्द्रं
बृहन्तं ऋष्वं अजरं युवानम्॥ ऋ. ३।३२।७

(बृहन्तं वृद्धं) बडे वृद्ध परंतु (अजरं युवानं) जरा रहित युवा और (ऋष्वं इन्द्रं) सामर्थ्यवान् इन्द्रकी (नमसा यजाम) नमस्कार करके पूजा करते हैं।

इस मंत्रका हरएक पद महत्वका है। 'बृहन्तं वृद्धं अजरं युवानं' बडे वृद्ध परंतु जरा रहित तरुण। वृद्ध आयुसे होता है, वैसा आयुसे बडा वृद्ध हो, पर कार्य करनेमें जरा रहित तरुण हो,। ऐसा इन्द्र है। और वैसा हर एक वैदिक धर्मी बने। यह इसका तात्पर्य है।

अजरं प्रहेतारं अप्रतिहतम्। ऋ. ८।९९।७

जरा रहित इन्द्र, शत्रुपर प्रहार करता है और कभी पराङ्ख नहीं होता तथा—

इन्द्रं अजुर्यं जरयन्तं उक्षितं
सनाद् युवानं अवसे हवामहे॥ ऋ. २।१६।१

इन्द्र (अ-जुर्यं) जरारहित है पर (जरयन्तं) शत्रुको क्षीण करता है (उक्षितं सनात् युवानं) बलवान् और सदा तरुण है अतः उसको हम अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं।

इन्द्रं महां उग्रं अजुर्यं सहोदाम्। ऋ. ६।१७।१३

इन्द्र बडा उग्रवीर है, वह जरारहित है और बल बढानेवाला है। वृद्ध होनेपर भी वह तरुण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणि
इन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ ऋ. ३।४६।१

(अजूर्यतः) जरारहित (महतः श्रुतस्य) बडे कीर्तिमान् (वज्रिणः) वज्रधारी इन्द्रके (महानि वीर्याणि) बडे पराक्रम हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि आयु अधिक होनेपर भी वीर इन्द्र तरुण और जरारहित सा कार्य करनेवाला है। अतः वह युद्धमें विजयी होता है।

इन्द्र शस्त्रोंसे भी सहायता करता है।

इन्द्र स्वयं उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त रहता है और दूसरोंको भी उत्तम शस्त्रास्त्र देता है, जैसे उन्होंने कौरव पांडवोंके युद्धमें पांडवोंको दिये थे—

सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् ॥ ऋ. २।१९।४

तत्काल वह मानवी वीरोंको शस्त्रास्त्रोंकी सहायता करनेवाला होता है।

घोडों और गौओंकी पालना करनेवाला इन्द्र

इन्द्र युद्धमें वीरोंके बैठने और रथोंके खींचनेके लिये घोडे पालता था। और इससे उसके पास उत्तम सुशिक्षित घोडे थे, उसी तरह वीरोंको गौओंका दूध पिलानेके लिये गौवें भी उत्तम थीं। इन्द्रके वीर 'मरुत्' थे और उनका नाम 'गो-मातरः' ऐसा आया है। हजारों मरुद् वीरोंके दूध पिलानेके लिये जितनी गौओंकी आवश्यकता होती थी, उतनी गौवें इन्द्र पालता था।

अस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः। ऋ. ३।३१।१४

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! तू (गो-पाः) गौओंका पालन करनेवाला है, (अस्माकं सु बोधि) हमारा भाव उत्तम रीतिसे समझ।

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी। ऋ. १।१०१।४

जो इन्द्र घोडोंका और गौओंका (वशी पतिः) वशमें रखनेवाला पालक है। अर्थात् घोडों और गौओंका पालन करता है और उनको अपने वशमें रखता है।

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः। ऋ. ३।३०।२१

हे (गोपते) गौओंके पालक इन्द्र! (गोत्रा आदर्दृहि) गौओंके बाडे खोलकर (नः गाः) हमें गौवें दे।

भूरिगो भूरि वावृधुः। ऋ. ८।६२।१०

हे (भूरि-गो) बहुत गौवें अपने पास रखनेवाले इन्द्र! तेरी गौवें (भूरि वावृधुः) बहुत बढ गयी हैं।

अहननीय गौओंका स्वामी इन्द्र है। इस प्रकार गौओंका पालक इन्द्र है।

गौओंकी परीक्षा करनेवाला इन्द्र

इन्द्र गौओंकी केवल पालना ही नहीं करता, परंतु उन गौओंकी वह परीक्षा भी करता है, देखिये—

गोविदं ईशानं राय ईमहे। ऋ. ८।५३।१

(गो-विदं) गौओंकी परीक्षा करनेवाला और (रायः ईशानं) धनका अधिपति जो इन्द्र है उसकी हम (ईमहे) स्तुति करते हैं।

जनिता अश्वानां जनिता गवामसि। ऋ. ८।३६।६

(अश्वानां जनिता) घोडोंको उत्पन्न करनेवाला और (गवां जनिता असि) गौओंका भी उत्पन्न करनेवाला है।

यहां घोडों और गौओंकी उत्पत्ति करनेवाला इन्द्र है उसका वर्णन आया है। इसका अर्थ यह है कि घोडों और गौओंका नसल सुधारनेवाला, उनकी उत्तम जाति बनानेवाला इन्द्र है यह भाव यहां है। जातिका सुधार करनेकी एक विद्या है, उस विद्यामें इन्द्र बडा प्रवीण है। यह इस कथनका तात्पर्य है।

अश्वजिते गोजिते अब्जिते भर। ऋ. २।२१।१

घोडोंको जीतनेवाले, गौओंको जीतनेवाले, जलको जीतनेवाले इन्द्रके लिये समर्पण कर दो। युद्धमें शत्रुको पराजित करके उनसे घोडे, गौवें तथा जल स्थानोंको अपने आधीन करनेवाला इन्द्र है।

स्वश्वो यो अभीरुः मन्यमानः। ऋ. ४।२९।२

(स्वश्वः=सु-अ-श्वः) उत्तम घोडोंका स्वामी इन्द्र है और वह (अ-भीरुः) डरनेवाला नहीं और (मन्यमानः) माननीय है।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृचन्तं अब्रवम् ॥
ऋ. ८।२४।१४

(हरीणां पतिं) घोडोंके स्वामी जो (दक्षं) दक्ष है, और (पृचन्तं) दाता है उसकी मैं स्तुति करता हूं।

इन्द्रको घोडोंका स्वामी कहा है। वह सच्चा स्वामी है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्योंकि वह पालन करता है और उसकी उत्तम जाति भी निर्माण करता है ।

अश्वपते गोपत उर्वरापते सोमं सोमपते पिब ।
ऋ. ८।२१।३

घोडोंका स्वामी, गौओंका स्वामी, भूमिका स्वामी, सोमका स्वामी इन्द्र है वह तू सोम पी । यहां इन्द्रको घोडों और गौओंका सदा पालन कर्ता कहा है ।

वचो युजा वहत इन्द्रं ऋष्वम् । ऋ. ६।२०।९

(वचो युजा) शब्दोंके इशारेसे जुड जानेवाले सुशिक्षित घोडे (ऋष्वं इन्द्रं वहत) बलवान् इन्द्रको ले जाते हैं ।

अश्वयुः गव्युः रथयुः । ऋ. १।५१।१४

इन्द्र घोडों गौवों और रथोंसे युक्त है । अर्थात् इन्द्रके पास बहुत घोडे आदि हैं ।

हरि प्रिय ! अर्वाङ् याहि । ऋ. ३।४१।९

हे (हरि-प्रिय) घोडोंसे प्यार करनेवाले इन्द्र ! यहां आ । इस मंत्रमें इन्द्र घोडोंपर प्रेम करता है ऐसा कहा है । प्रेम करनेसे घोडे भी प्रेम करते हैं और दोनों परस्पर प्रेम करने लगते हैं । ऐसे सुशिक्षित घोडे तैयार करके इन्द्र उनका दूसरोंके लिये दान भी करता है—

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि । ऋ. १।५३।२

घोडोंका दान और गौओंका दान तू करता है । अर्थात् इनकी नसल सुधार कर इनका दान लोगोंको देता है ।

मदमत्त घोडे

इन्द्रके घोडे मदमत्त रहते थे क्योंकि उनका खानपान उत्तमसे उत्तम रहता था । देखिये—

युक्ष्वा हि मदच्युता हरी । ऋ. १।८१।३

' अपने मदमत्त घोडोंको तू जोत । ' यहां इन्द्रके घोडे मदस्राव करनेवाले थे ऐसा कहा है । अर्थात् ये उत्तमसे उत्तम घोडे थे ।

वेगवान् घोडे

इन्द्रके घोडे बडे वेगवान् थे । अच्छी दौड लगानेमें वे प्रवीण थे । देखिये—

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती
हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि । ऋ. ३।३५।२

(पुरु हूताय) जनेकों द्वारा प्रशंसित हुए इन्द्रके लिये (अजिरा सप्ती) जीर्ण नहीं हुए ऐसे घोडे (रथस्य धूर्षु आ युनज्मि) रथकी धुरामें जोडता हूं ।

यहां इन्द्रके घोडोंका ' अजिरा सप्ती हरी ' जरारहित हरिद्वर्णके घोडे रथकी धुरामें जोते जाते हैं क्योंकि रथ वेगसे चले और इन्द्र शीघ्र जहां पंहुचना हो वहां पहुंचे ।

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र
ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः । ऋ. १।१७७।२

हे इन्द्र ! (ते) तेरे (वृषणः वृषभासः) बलवान् और सामर्थ्यवान् (ब्रह्म-युजः) इशारेसे जुडनेवाले (वृष-रथासः), मजबूत रथमें जोडे जानेवाले (अत्याः) बडे दौडनेवाले घोडे हैं ।

यहां ' अत्याः ' बडे दौडनेवाले, घुडदौडके मैदानमें वेगसे दौडनेवाले इस अर्थके पदका प्रयोग किया है । इससे प्रतीत होता है कि इन्द्रके घोडे दौडनेवाले थे ।

ये अश्रमास उरवो वहिष्ठाः
तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥ ऋ. ६।२१।१२

(ये अश्रमासः) श्रम जिनको होते नहीं (उरवः वहिष्ठाः) ऐसे जो बडे घोडे हैं, हे इन्द्र ! (तेभिः नः वाजं अभिवक्षि) उनसे तू हमारे यज्ञमें आ ।

इसमें इन्द्रके घोडे थकते नहीं ऐसा कहा है । इतने शक्तिशाली वे घोडे थे ।

सुन्दर बालवाले घोडे

इन्द्रके घोडे सुन्दर बालवाले थे ऐसा वर्णन वेदमें आता है—

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी । ऋ. १।८२।६

हे इन्द्र ! (ब्रह्मणा) इशारेसे (केशिना हरी युनज्मि) सुन्दर बालोंवाले घोडे तेरे रथमें जोडता हूं ।

आ मन्द्रैः इन्द्र हरिभिः
याहि मयूररोमभिः । ऋ. ३।४५।१

हे इन्द्र ! (मन्द्रैः) सुन्दर (मयूररोमभिः) मोरके समान बालोंवाले (हरिभिः) घोडोंसे (आयाहि) आ ।

इसमें मयूरके बालोंके समान सुन्दर बालवाले इन्द्रके घोडे थे ऐसा लिखा है ।

अस्तु, इस तरह सुन्दर बालोंवाले इन्द्रके घोडे थे ऐसा इस मंत्रसे सिद्ध हुआ ।

यहां तक इन्द्रका वर्णन हमने संक्षेपसे देखा, उससे यह प्रतीत हुआ कि वह शूर, युद्धकुशल, संरक्षण कर्ता है । अतः उसे विश्वराज्यका संरक्षण मंत्री कह सकते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला इन्द्र

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ मानवोंका हित करनेवाला	४६०	१४ इन्द्र उत्तम सेनापति है	४७६
२ इन्द्र नेता है	४६०	१५ जनहितार्थ ही वह सब करता है	४६७
३ इन्द्रके सामर्थ्य	४६१	१६ इन्द्र नेता है	४६७
४ सेनाके गणोंका स्वामी इन्द्र	४६२	१७ इन्द्रका सामर्थ्य	४६७
५ युद्धमें प्रवीण	४६२	१८ सेनाके गणोंका स्वामी इन्द्र	४६७
६ युद्धोंमें तेजस्विता	४६२	१९ इन्द्रकी युद्धोंमें तेजस्विता	४६८
७ शस्त्रास्त्रोंसे सहायता करनेवाला	४६३	२० इन्द्र युवा है	४६८
८ युद्धकलामें निपुण इन्द्र	४६३	२१ इन्द्र शस्त्रास्त्रोंसे भी सहायता करता है	४६९
९ युद्धके लिये संस्कार संपन्नता	४६४	२२ घोडों और गौओंकी पालना करनेवाला इन्द्र	४६९
१० शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला	४६४	२३ गौओंकी परीक्षा करनेवाला इन्द्र	४६९
११ युद्धमें आगे बढनेवाला	४६५	२४ इन्द्रके मदमत्त घोडे	४७०
१२ कपट युद्धमें प्रवीण	४६५	२५ इन्द्रके वेगवान् घोडे	४७०
१३ शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला	४६५	२६ इन्द्रके सुन्दर बालवाले घोडे	४७०

सूचीपत्र मंगवाइये] **वेदकी पुस्तकें** [ग्राहक बनिये

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुद्देवता मन्त्र संग्रह	२)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शाखीयः ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)		

मूल्य के साथ डा. व्य., रजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३- हिरण्यगर्भ

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय काशी]

सलिलम्

हिरण्यगर्भ यह विशाल वैदिक विद्याका संक्षिप्त सूत्र ही है। पुराणोंमें 'एकार्णव विधि' शीर्षकके अन्तर्गत इस विषयका विस्तार पाया जाता है। ऋग्वेदमें सृष्टिके मूल कारणको 'आपः' या 'सलिलम्' कहा है--

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे
अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
नासदीय सूक्त, ऋ. १०।१२९।३

प्राक् सृष्टि कालीन अवस्थामें तमको तमने छिपा रखा था। यहां पहला तम केन्द्रस्थ गुहातत्त्व या अव्यक्तका उपलक्षण है। उसे 'स्वयंभू' भी कहते हैं। दूसरा तम शब्द उस परमेष्ठीके लिए है, जो 'विराज्' भी कहा जाता है और जिसे रूपरहित अभिव्यक्ति कह सकते हैं। 'विराज्' ऐसी समष्टिकी संज्ञा है, जिसमें केवल भाव विज्ञान या अर्थकी सत्ताकी कल्पना की जा सकती है, किन्तु व्यष्टि या केन्द्रके रूपमें जो अभी प्रकट नहीं हुआ है। यही तमके भीतर गूढ तम या अव्यक्तके भीतर लीन समष्टिका रूप है। पहला तम अनुपाख्य है, अर्थात् जिसके विषयमें किसी प्रकारका कथन नहीं किया जा सकता, किन्तु दूसरा तम पहले की अपेक्षा सिसृक्षा भावकी ओर अधिक प्रवृत्त होता है। उसे हम केवल मानसी सृष्टि कह सकते हैं। वह उस गर्भके समान है, जिसकी स्थिति माताकी कुक्षिमें है और जो अभी बाल रूपमें प्रकट नहीं हुआ है। इसलिए 'विराज्' को वेदोंने मातृतत्त्व माना है। उसको ही पारमेष्ठ्य 'सोम', 'आपः' या 'सलिलम्' भी कहा है। उस विराट् माता या 'आपः' के गर्भसे जो बालक प्रकट होता है, वह 'सूर्य' है। सूर्य अग्निका ही रूप है। अतएव अग्नि 'अपांनपात्' कहा जाता है। ऊपर जिसे सलिल कहा है, उसे ही 'समुद्र' भी कहा जाता है। ऋग्वेदमें कहा है कि यह सूर्य पहले समुद्रमें छिपा हुआ था—

अत्रा समुद्र आगूळ्हं आ सूर्यमजभर्तन।
ऋ. १०।७२।७

इसी सलिल या समुद्रके लिए ऊपर 'अप्रेकतम्' शब्द आया है, अर्थात् जिसमें कोई भी रूप आकृति या रंग अपने पृथक् भावमें ज्ञात न था। यद्यपि अनिरुक्त भावसे सब कुछ उसमें विद्यमान था। सृष्टि, विश्व या भुवनकी संज्ञा वेदमें 'इदं सर्वम्' है। 'अप्रकेतम् सर्वमा इदं' का यही अभिप्राय है कि यद्यपि यह विश्व अपने मूल स्रोतमें अवश्य विद्यमान था, किन्तु उसके स्वरूपका कोई पृथक् चिह्न या पहचान नहीं थी। वह समष्टिमें लीन था।

जिसे ऊपर 'सलिलम्' कहा गया है, वही गहन, गम्भीर 'अम्भ' भी कहा जाता है—

अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्। ऋ. १०।१२९।१

इसे ही पुराणोंमें 'एकार्णव' की संज्ञा दी है। जिसमें दो, तीन, चार आदिकी पृथक् संख्याएं नहीं होतीं, वही 'एकमेवाद्वितीयं' कहा जाता है। उसे ही 'अखण्ड-भाव' या 'आखण्डल' कहते हैं। संसारकी प्रत्येक रचना खण्ड भाव है। वह पूर्वकालीन महासमुद्रका ही एक-एक भाग है। सृष्टिके समय जलकी ये धाराएँ या सरोवर अलग-अलग हो जाते हैं। प्रलय कालमें उनको बांटनेवाली सीमाएं मिट जाती हैं। और उस अवस्थाको 'महासमुद्र' या 'एकार्णव' संज्ञासे व्यक्त किया जाता है।

यह विश्व क्या है? यह निःसन्देह उसी शक्ति समुद्रके जल या जलोंका तक्षण है। ऋग्वेदमें कहा है।

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षति। ऋ. १।१६४।४१

गौरी नाम 'वाक्' का है, जिसे 'परमेष्ठिणी वाक्' भी कहते हैं। वह अर्थप्रधाना वाक् है। उससे नीचेकी कोटिमें शब्दप्रधाना सरस्वती वाक् है। यह वाक् सूर्यलोक से आरम्भ होता है। क्योंकि शब्दकी भाँति सूर्य भी प्रत्यक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यहां दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं। एक 'गौरी' दूसरा 'गौ'। गौरीका अर्थ जंगली भैंस है और गौका अर्थ पालतू गाय है। ये संज्ञाओंके भेद हैं। इन्हें अच्छी तरह जान लेना चाहिए। गौरीका रंग काला और गौका श्वेत है। गौरी जंगली पशु है और गौ पालतू। गौरीका सम्बन्ध पूरे वनसे और गौका एक वृक्षसे होता है। जैसा कहा है—

वृक्षे-वृक्षे नियता मीमयद् गौः। ऋ. १०।२७।२२

गौरीका सम्बंध वरुणसे और गौका इंद्रसे माना गया है। गौरी या भैंसको जल प्रिय होता है और गौको धूप। गौरी और गौकी ये दो परिभाषाएं वेदार्थके लिए ध्यान देने योग्य हैं। ऊपर कहा है कि गौरी वाक् समुद्रोंके जलका तक्षण करके उनसे एक एक विश्वका निर्माण करती है। इसी बातको वेद और भी कई प्रकारसे कहते हैं—

तस्याः समुद्रा अधि विक्षरन्ति। ऋ. १।१६४।४२

अर्थात् यदि इस विश्वको जल माना जाय तो कहा जा सकता है कि यह अपने उस महासमुद्र रूपी स्रोतसे टपकी हुई एक बूँद है, जिस स्रोतमें कोटि-कोटि विश्व समाए हुए हैं।

वेदोंमें सृष्टिके जन्मके लिए अनेक प्रकारकी संज्ञाएं आती हैं। जैसे 'वेपन, जागरण, जिन्वन्, इन्वन्, प्राणन्, निःश्वसन, विक्रमण, धमन, शिंघण, रोचन, स्कन्दन, समिन्धन, समञ्जन-प्रसारण, नर्तन, विमान, हवन, सवन' आदि उन्हींके समान क्षरण भी विश्व रचनाकी एक प्रक्रिया है। अमृत प्राणसे जब मर्त्य प्राण पृथक् होकर भूतोंमें समाविष्ट होता है तो उसे ही 'क्षरण' कहते हैं। इस दृष्टिसे प्राण अक्षर और भूत क्षर हैं।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
गीता १५।१६

जब हम इस अनन्त ब्रह्माण्डकी ओर आंख उठाते हैं तो किसी आश्चर्यके क्षणमें यही प्रतीति होती है कि इतना विशाल होते हुए भी यह विश्व ब्रह्मकी तुलनामें इतना छोटा है, जैसे समुद्रकी तुलनामें एक बूंद।

उस प्रशान्त महासमुद्रका राजा 'वरुण' कहा जाता है। वरुण उस समुद्रका सम्राट् है। वह महान् 'असुर' है। देवोंको भी अपनी शक्तियां उसी महान् असुरसे ही प्राप्त होती हैं। उसीको लक्ष्य करके कहा जाता है—

महद्देवानामसुरत्वमेकम्। ऋ. ३।५५।१

जहां तक समुद्रका विस्तार है, वहीं तक वरुणके पाश फैले हुए हैं। वरुण असुरोंका अधिपति है। असुरोंकी शक्ति ही जब यज्ञीय भावमें आती है, अर्थात् किसी एक केन्द्रसे नियमित होती है तब उसीसे देवोंका जन्म होता है। देव यज्ञमय हैं। असुर यज्ञके विध्वंसक हैं। यज्ञ भावमें आई हुई शक्ति यदि यज्ञके नियमसे बाहर हो जाती है, तो वही पुनः आसुरी बन जाती है। असुरोंके अधिपति वरुणके समुद्रसे यज्ञके द्वारा देवमयी शक्तिका जन्म ही सूर्य है। सूर्य सर्व देवमय है। वह विश्वदेव्य है। यदि वरुणका ही एक छत्र अधिकार रहता तो विश्वका जन्म संभव न था। किन्तु वरुणके साथ 'मित्र' भी है। मित्रा-वरुणौके देवताद्वन्द्वसे इस द्वन्द्वात्मक विश्वका जन्म होता है। मित्रकी शक्तिसे सूर्यका जन्म हुआ। मित्रकी ज्योतिके प्रतीक सूर्य हैं। सूर्य हि 'हिरण्यगर्भ' है। उसे 'नारायण' भी कहा गया है। वेदोंमें हिरण्य शब्द महत्वपूर्ण प्रतीक है। प्राणकी संज्ञा हिरण्य है। समस्त विश्वका जो एक बीज या रेत है, जिसकी शक्तिसे यह विश्व आविर्भावमें आता है, उसे 'भुवनस्य रेतः' कहा गया है। (ऋ. १।१६४।३६) उसीकी संज्ञा हिरण्य है—

रेतो हिरण्यम्। तैत्तिरीय ब्रा. ३।८।२।४

शुक्रं हिरण्यम्। तैत्तिरीय ब्रा. १।७।६।३

इस दृष्टिसे हिरण्यकी कई परिभाषाएं ब्राह्मण ग्रंथोंमें मिलती हैं और सभी संगत हैं। आयु, अमृत, देव, प्राण, तेज, ज्योति, सत्य ये सब हिरण्यके पर्याय हैं और सब ही सृष्टिके अनुकूल तत्व हैं। इनके प्रतिकूल तम, असुर, अनृत, मृत्यु आदि जो तत्व हैं, वे सृष्टि विरोधी हैं। जो हिरण्यगर्भ है वही 'सूर्य' या 'अग्नि' है। उसे 'अपांनपात्' या 'अपांगर्भ' भी कहते हैं। ऋग्वेदके अनुसार सर्व प्रथम हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। वही द्यावापृथिवीको धारण करता है। अन्य जो कुछ विश्वमें है, उस सबका अधिपति या उद्गम स्थान हिरण्यगर्भ है। प्रजापति सूक्तमें कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम। ऋ. १०।१२१।७

इसमें चार बातें कही गई हैं—

१ बृहतीः आपः— अर्थात् महान् जल, जिसे ऊपर 'समुद्र' 'सलिल' कहा गया है। पुराणोंमें इसे ही 'आपो नाराः' या 'अप एव ससर्जादौ' कहा गया है।

२ विश्वं गर्भं दधाना— ये विश्व उन जलोंके भीतर गर्भ रूपमें विद्यमान था। यदि उन पारमेष्ठ्य जलोंको जो सृष्टिके मूल स्रोत थे, 'ऋतमेव परमेष्ठि' कहा जाय, तो उस ऋतके गर्भसे सर्व प्रथम जन्म लेनेवाला तत्व अग्नि है। जैसे ऋग्वेदमें ही कहा है—

अग्निर्हि नः प्रथमजा ऋतस्य। ऋ. १०।५।७

३ जनयन्तीरग्निम्— अर्थात् उन जलोंने अपने पुत्र अग्निको जन्म दिया। वही 'अपांनपात्' या 'अपांगर्भ' कहा गया है। उसे ही वैदिक परिभाषामें 'त्रित आप्त्य' भी कहते हैं, जलोंसे जन्म लेनेके कारण आप्त्य और अग्नि त्रेता होनेके कारण त्रित।

४ देवानां असुः एकः— जो अग्नि उत्पन्न हुआ, वह सब देवोंका असु या प्राण है। वही हिरण्यगर्भ, या सत्य-नारायण सूर्य है। यह विश्व उसी नारायण पुरुषका यज्ञ है। इस दृष्टिसे यह समीकरण प्राप्त होता है—

सत्य= हिरण्य=प्राण=अग्नि=सूर्य=नारायण

एकार्णव विधि

पुराणोंकी परिभाषाके अनुसार प्रलय कालीन महासमुद्रको 'सलिल (हरिवंश ३।१०।१) महार्णव, एकार्णव, अगाध स्तब्ध सलिल (हरिवंश ३।१०।३४) युगान्ततोय' (भागवत ३।८।२३) आदि नामोंसे कहा गया है। हरिवंशमें कुछ और आगे बढकर यह कल्पना की है, कि एकार्णव जल नीहारसे ढका हुआ था। उस समय उसमें भूतोंकी सत्ता न थी और हरएक वस्तु अव्यक्त होनेसे रूपरहित वह समुद्र अति भीषण दिखाई पडता था—

यथा चैकार्णवजले नीहारेण वृतान्तरे।
अव्यक्तभीषणे लोके सर्वभूत विवर्जिते॥
हरि. ३।१०।३१

यहां यह कल्पना की गई है कि जो रूपवान् विश्व है, वह सुन्दर और सुदर्शन है एवं जो रूपरहित है और अव्यक्त है, वह दुर्दर्शन और भयंकर है। ज्योति या दिन सृष्टिका रूप है, एवं तम या रात्रि प्रलयका। प्रलयकी रात्रिमें सब रूप विलीन हो जाते हैं। वही अव्यक्त भाव है। यहां नीहार शब्द पारिभाषिक एवं महत्वपूर्ण है। लोकमें जिसे 'नीहारिका' कहते हैं एवं वेदोंमें जिसे 'नभस्वान्' कहा है, वही यहां नीहारसे अभिप्रेत है। तीन लोकोंके मूलमें तीन समुद्र हैं। पृथ्वी लोकका 'अर्णव' समुद्र, अन्तरिक्षका 'सरस्वान्' समुद्र और द्युलोकका 'नभस्वान्' समुद्र है। (त्रीन् समुद्रान् यजु. १३।३१)। वैदिक 'नभस् (मेघ कोहरा) का ही लौकिक संस्कृतमें 'नभ्य' और 'नभस्य' होता है, जिसका अर्थ कोहरा है। इसे ही 'नभोजा' भी कहा है। यह सूर्यसे पूर्वकी अवस्था है। इसे ही वर्तमान खगोल विज्ञानमें 'नेबूला' कहते हैं। यह लैटिनका शब्द है, जिसके लिए मूल यूनानी भाषामें नीफीले (Nephele) शब्द है। वर्तमान मान्यता के अनुसार अनेकानेक नीहारिकाएं हैं जिनके आवर्त्तकोंसे निरन्तर सूर्य जन्म ले रहे हैं। कोई दुर्धर्ष अक्षर या अविनाशी गतितत्व दूरातिदूर नीहारिकाओंमें भी व्याप्त है और वही गति जब केन्द्र विशेषसे नियमित हो जाती है, तब ह्रास और वृद्धिकी क्रियासे उन्मुक्त होकर अखण्ड, नियमित गतिके रूपमें प्रकट होती है, उसीकी संज्ञा सूर्य है।

नीहारिका लोक वरुणका समुद्र या तमोलोक है वहां भी गतिरूपी गउएँ हैं, किन्तु वरुणके पाशमें हैं। यही इन्द्रका बडा पराक्रम है कि यह वलको परास्त करके उन गउओंको उन्मुक्त करता है। यही तत्व सूर्यका जन्म है। जिसकी किरण रूपी गउएँ नियमित गतिकी प्रतीक हैं। सृष्टिके आदिसे अन्त तक उनकी नियमित गतिमें पल भरका भी अन्तर नहीं पडा और न कभी पडेगा। अहोरात्र, दर्शपौर्णमास आदि उदयास्तमय कालचक्र सूर्यकी गतिका मूर्त्त रूप है। इस प्रकारके आदित्य, सूर्य, इन्द्र या हिरण्यगर्भके जन्मसे पूर्व आपोमय समुद्रके मेघोंसे आच्छन्न तमोमयी अवस्था ही 'नीहार' या 'नभोजा' तत्व था। उसके गर्भमें न जाने कितने सूर्य छिपे हुए थे और आज भी अन्तर्लीन हैं। उसीको दृष्टिमें रखकर ऋग्वेदमें कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्रा समुद्रं आगूळहं आ सूर्यमजभर्तन ।

ऋ. १०।७२।६

'अर्थात् देवोंके पूर्व युगमें एक महा समुद्र था, । उसीसे उत्तर युगमें सर्व देवमय सूर्यका जन्म हुआ'। प्रत्येक देव एक-एक यज्ञीय शक्ति अथवा नियमित गतिका प्रतीक है।

पुराणके लेखकोंने कल्पना की है कि सृष्टिके जितने भाग और अवान्तर विभाग हैं, वे सब इसी प्रकार हैं, जैसे एक समुद्रका जल मेघोंके द्वारा नदी, सरोवर, कूप आदिमें दिखाई पडता है—

भूत्वा नारायणो योगी सप्तमूर्त्तिर्विभावसुः ।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ॥ १ ॥
पीत्वाऽर्णवांश्च सर्वान् सनदीः कूपांश्च सर्वशः ।
पर्वतानां च सलिलम् सर्वं पीत्वा च रश्मिभिः ॥२॥
भित्वा सहस्रशश्चैव महीं नीत्वा रसातलम् ।
रसातलजलं कृत्स्नं पिबते रसमुत्तमम् ॥ ३ ॥
अप्सु सृजन् क्लेदमन्यद्दाति प्राणिनां ध्रुवम् ॥ ४ ॥

हरिवंश. ३।९

अर्थात् प्रलयके समय योगमूर्ति नारायण अग्निके रूपमें सात जिह्वाओंसे सब समुद्रोंको सुखा डालते हैं और नदी, कूप, समुद्र, मेघ आदि समस्त जलोंको पीकर इस पृथ्वीको छिन्न-भिन्न करके रसातलमें पहुंचा देते हैं और रसातलके जलको भी अपने भीतर पी जाते हैं। नीलकण्ठने 'अप्सु' का अर्थ 'कारण ब्रह्म' किया है। इसका आशय ये है कि जितने कार्य हैं, वे सब अपने कारणमें लीन हो जाते हैं। यही प्रलय है। प्रलयके अनन्तर जब पुनः सृष्टि होती है, तब वही योग निद्रामें शयन करते हुए भगवान् नारायण अपने भीतरसे पुनः जल या रसका उत्सर्ग करते हैं। वही प्राणियोंमें नित्यप्राण तत्व है। जिसे यहां 'क्लेद' कहा है, वही 'कलल-रस' है। वह जलका ही अत्यन्त सूक्ष्म और प्राणकी सत्तासे अनुप्राणित रूप है। प्राणीकी सत्ताके जितने उपादान या मूल तत्व हैं, वे सब उस नारायणीय 'क्लेद' या 'कलल' में रहते हैं। अर्वाचीन शब्दोंमें कहना चाहें तो वह क्लेद ही 'कोष' या 'सेल' के भीतरका रस है, जिसे 'प्रोटोप्लाज्म' नाम दिया जाता है। यही वह प्राण रूपी रस है, जो सब प्राणियोंके भीतर संचार करता हुआ जीवनके मूलको हरा रखता है। वृक्ष-वनस्पति, कीट पतंग, पशुपक्षी और मनुष्य जहाँ भी प्राणकी अभिव्यक्ति होती है, वहीं यह जीवनरस विद्यमान है।

इस रसके भीतर जो प्राणका स्पंदन है, वही 'हिरण्यगर्भ नारायण' कहा जाता है। जलोंसे उत्पन्न होनेके कारण उसे ही 'अपांवत्स' 'अपांवृषभ' 'अपांनपात्' 'अपांगर्भ' आदि नामोंसे कहा गया है। ये अग्निकी संज्ञाएं हैं। अग्नि ही 'प्राण' या 'हिरण्य' का प्रतीक है।

निद्रागतनारायण

प्रलयान्त समुद्रकी सबसे बडी विशेषता उसके भीतर व्याप्त 'नारायण' तत्व है। नारायणके दो रूप हैं। एक सृष्टिमें और दूसरा प्रलयमें। सृष्टि व्यक्त और प्रलय अव्यक्त अवस्था है। सृष्टि नारायणका जागरण और प्रलय उनकी निद्रा है। निद्रा और जागरणको ही संकोच और विस्तार कहते हैं। वैदिक भाषामें इन्हींकी संज्ञा 'समञ्चन' और 'प्रसारण' है। पुराणोंमें निद्रागत नारायणके प्रतीकका विशेष उपबृंहण पाया जाता है—

एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
भोगीशय्यागतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ॥

विष्णु. १।३।२३

यहां नारायण और ब्रह्माको पर्याय माना है। वस्तुतः जो बृंहण तत्व या बढनेका नियम है, वही 'हिरण्यगर्भ नारायण' है। नारायण शब्दकी निरुक्ति और व्याख्या आगे की गई है। विष्णु पुराण १।३।३;१।४।१;१।४।४-५ में भी ब्रह्मा और नारायणको एक कहा गया है। वस्तुतः नारायणके नाभिकेन्द्रसे उद्गत जो बृंहणतत्व है, उसे ही 'ब्रह्मा' कहा जाता है। ब्रह्माको पद्मपर आसीन कहा गया है। जो पद्म है वही पुष्कर है। सर्वप्रथम अग्नि ही पुष्करके रूप में जन्म लेता है। जलोंके ऊपर तैरते हुए पद्मको देखकर इस सुन्दर प्रतीककी कल्पनाकी गई है। पद्म, कमल या पुष्कर क्या है? इसका उत्तर यही कि प्रलयकालमें अवशिष्ट जल या समुद्रके भीतर जो प्राण या जीवन तत्व छिपा रहता है वही सृष्टिके समय बालरूपमें जन्म लेता है उसीका रूप अग्नि और सूर्य है। अग्नि और सूर्य यही दोनों पुष्करके रूप हैं। आख्यानोंमें जो पद्मका संबंध सूर्यसे कहा जाता है उसका हेतु यही है। द्युलोकमें जो सूर्य है वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भौतिक पदार्थोंका समुदाय तो है किन्तु उसे ऋषियोंने उस महान् शक्तिका प्रतीक माना है वही विज्ञानघन शक्ति ब्रह्म है—

किं स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः । यजु. २३।४७

प्रश्न है कि सूर्यके समान दूसरी ज्योति कौन है ? इसका उत्तर है कि—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः । यजु. २३।४८

ब्रह्म सूर्यके समान दूसरी ज्योति है। इसका अर्थ यही है कि हम जिस विभ्राट् ज्योतिके सूर्यके रूपमें नित्य दर्शन करते हैं वह उस महान् विज्ञानमय या चैतन्यमय शक्तिका प्रतीक है जो इस समस्त विश्वका मूल कारण है और जिसके ज्ञानमय तपसे यह सृष्टि उत्पन्न हुई है, वही ब्रह्म है। इसी दृष्टिसे सूर्यको चराचरका आत्मा कहा गया है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋ. १।११५।१

जो यह सूर्य है यही तो सबका प्राण है—

प्राणः प्रजानां उदयत्येष सूर्यः । प्रश्न. उप. १।८

उसी महाप्राण सहस्रात्मा सूर्यकी एक-एक रश्मि प्रत्येक प्राणिके चैतन्य केन्द्रमें अभिव्यक्त है।

वह सूर्य नारायणका ही रूप है। उसे ही 'सत्यनारायण' और 'यज्ञ नारायण' भी कहते हैं। विश्वरूपी यज्ञ को आरम्भ करनेवाला वही है। वह नारायण जैसा ऊपर कहा जा चुका है, प्रलयके महासमुद्रसे जन्म लेता है। सूर्यको जन्म देनेवाले समुद्रको वेदोंमें 'पारमेष्ठ्य सोमका समुद्र' या 'ऋत् समुद्र' या 'ब्रह्मणस्पति सोमका महान् सरोवर' भी कहा है। प्रश्न यह है कि उस अनंत समुद्र और उससे उत्पन्न हुए सूर्यका परस्पर क्या संबंध रहता है ? इसका उत्तर यह है कि जो ब्रह्मका विश्वमें आया हुआ अंश है वह दशाङ्गुल पुरुष है और जो विश्वातीत है वह सहस्रशीर्षा पुरुष है। सहस्र अनंतका पर्याय है। विश्वात्मक विष्णुसे जो अंश अवशिष्ट रहता है वही शेष है और उस शेषकी संज्ञा 'अनंत' है। तीन पैरोंसे विश्वका मापन करनेवाले लोकात्मा एवं भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीनों काल भेदोंसे सृष्टिको परिच्छिन्न करनेवाले कालात्मा विष्णु ही नारायण पुरुष हैं। वे अनन्त शेषके आलम्बन या आश्रयसे प्रतिष्ठित हैं। इसे ही पुराणोंमें शेषशायी विष्णुके संक्षिप्त सूत्रमें प्रकट किया गया है। और उसे ही भारतीय शिल्पमें भी अंकित किया जाता है।

'भोगिशय्यागतः शेते' का संकेत यही है।

निद्रा और स्थिति दोनों एक ही तत्वके द्योतक हैं। विष्णुके दो रूप हैं। एक निरपेक्ष और दूसरा सापेक्ष। एक विश्वातीत दूसरा विश्वात्मक। एक स्थितिशील या स्थायी दूसरा गतिशील जिसके लिए वेदमें कहा है—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

ऋ. १।२२।१७

जो नारायणका स्थितिशील रूप है उसे ही 'एकमेवाद्वितीयम्, अज, अव्यक्त, केवल, नित्य, सदसदात्मक, अक्षय अव्यय, परम ब्रह्म, परमपद' आदि अनेक नामोंसे वेदों और पुराणोंमें कहा गया है। इस विषयमें पुराणके निम्नलिखित उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः।
रूपवर्णादिरहितो विशेषणविवर्जितः ॥ १ ॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम् ॥२॥
सर्वत्रासौ समश्चापि वसन्ननुपमो मतः।
भावयन् ब्रह्मरूपेण विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
तद् ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम्।
एकस्वरूपं च सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥ १ ॥
तदेतत् सर्वमेवैतद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत्।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥
परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमो द्विजः।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथापरम् ॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत्।
पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः।
रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ॥
व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय ॥

किर्फेल पुराण पंचलक्षण पृ. ६

सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति शुश्रुम।

इस मान्यताके अनुसार गूढ वेदार्थको, गूढ वैदिक तत्वोंको अपनी परिभाषाओंमें ढाला है। नासदीय-सूक्तमें अहोरात्रवाद, तम-ज्योतिवाद आदि जिन प्रतीकोंका उल्लेख आता है उन्हींकी छाया निम्नवचनमें है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिः
नासीत् तमो ज्योतिरभून्न चान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥ विष्णु. १।२।२३

विष्णु पुराणके लेखकने स्पष्ट कहा है कि वैदिक ब्रह्म-वादी ऋषियोंने सृष्टिविद्याके इन तत्वोंका साक्षात्कार किया—

वेदवादविदो विद्वन् नियता ब्रह्मवादिनः ।
पठन्ति चैतमेवार्थं ... ... १।२।२२

जिसे हम प्रधान प्रकृति कहते हैं, उसका एकमात्र स्रोत और कारणतत्व ही ब्रह्म या पुरुष है । मैत्रायणी उपनिषद्ने इस धरातल परसे ऊंचे उठकर नारायणकी इस प्रकार व्याख्या की है ।

एष हि खल्वात्मेशानः शंभुर्भवो रुद्रः प्रजा-
पतिर्विश्वसृग्घिरण्यगर्भः । सत्यं प्राणो हंसः
शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता
विधाता सम्राडिन्द्र इन्दुरिति ॥ (मैत्रा. ६।८)

अर्थात् यह जो आत्मा है इसे ही अन्य अनेक नामोंसे कहते हैं जैसे ईशान, शंभु, भव, रुद्र, प्रजापति, विश्वसृज्, हिरण्यगर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शास्ता, विष्णु, नारायण, अर्क, सविता, धाता, विधाता, सम्राट्, इन्द्र, इन्दु । इस प्रकार वैदिक 'एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म तत्व' ही अनेक परिभाषाओं द्वारा उपबृंहित किया गया है ।

स्वयम्भू प्रजापति

इस प्रसंगमें मनुने अपने शास्त्रके आरम्भमें जिस सृष्टि विद्याका वर्णन किया है उसकी व्याख्या भी आवश्यक है, क्योंकि हिरण्यगर्भ विद्या वही है जो हैमाण्ड विद्या है ।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥
(मनु. १।५-७)

इन श्लोकोंमें कई शब्द पारिभाषिक हैं—

१ तमोभूतं
२ अप्रज्ञातं
(अ) अलक्षणं
(ब) अविज्ञेयं
३ प्रसुप्तं
४ अव्यक्त स्वयंभूः
५ वृत्तौजाः
६ तमोनुदः
७ अतीन्द्रिय ग्राह्य, सूक्ष्म, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य
८ सर्वभूतमयः इदं महाभूतादिव्यञ्जयन्
९ स्वयमुद्बभौ

१ तमोभूतं— जैसा ऊपर कहा गया है, सृष्टिकी संज्ञा दिन और प्रलयकी रात्रि है। रात्रि ही तम है अतएव सृष्टिसे पूर्वकी अवस्थाको तम कहा गया है। उसीके लिए नासदीय सूक्तमें 'तम आसीत् तमसा गूढमग्रे' आता है। सृष्टि विद्याके अनेक सिद्धान्तोंमें अहोरात्र भी एक था । इसीके अन्तर्गत सृष्टि और प्रलयके संकेत ज्योति और तम कहे गए हैं । इसीका दूसरा नाम 'कालवाद' है ।

२ अप्रज्ञातं— प्रज्ञान मनकी शक्ति है। सृष्टिसे पूर्व अव्यक्त तत्वका निरूपण मनसे नहीं हो सकता अतएव वह 'अप्रज्ञात' है । ज्ञानका साधन मन है । मनकी ही और कई संज्ञाएं हैं जैसे बुद्धि, संवित्, मेधा आदि । जो अविज्ञेय है उसे ही 'अप्रतर्क्य' और 'अलक्षण' कहा गया है, अर्थात् न उसका कोई लक्षण किया जा सकता और न उसकी सिद्धिके लिए कोई तर्क ही काममें आता है । तर्क या हेतुका आधार कार्य है जो सब कारणोंका परम कारण है उसकी सिद्धि तर्कसे नहीं होती । कहते हैं वहाँ तर्ककी प्रतिष्ठा या दृढभूमिका अभाव है । यदि कारणके कारण और फिर इस परम्पराके अंतमें जो कारण मिलता है उसके भी कारणका आग्रह किया जाए तो इस शृंखलाका कहीं अंत ही न मिलेगा ।

३ प्रसुप्तं— यह भी कहनेका एक प्रकार है । जो प्रसुप्त है वही निद्रागत है । जागरणमें मनुष्य गतिशील होता है और निद्रामें स्थितिशील । समस्त गतियोंकी समष्टिका नाम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थिति है। जितनी गतियां हैं सब चक्रके अरोंमें या परिधिमें रहती हैं। चक्रके केन्द्रमें गतिका नितान्त अभाव होता है। इसीके लिए यहाँ सर्वतः प्रसुप्त अर्थात् सब ओरसे गतिहीन कहा गया है। लोक तत्त्वका पर्याय गति है। गति द्वारा जो प्रकट होता है वही लोक है। विष्णुके तीन चरणोंमें तीन लोक समाए हुए हैं। जब ये तीनों अपने कारणमें लीन हो जाते हैं वही प्रसुप्त अवस्था है।

४ अव्यक्त स्वयंभू— जो परम कारण है उसे ही व्यक्त विश्वकी अपेक्षा 'अव्यक्त' कहा है। जैसा ऊपर कहा है वह अन्य किसी कारणसे जन्म नहीं लेता अतएव उसके लिए वैदिक परिभाषामें अत्यंत सार्थक 'स्वयंभू' इस संज्ञाका आविष्कार हुआ। स्वयंभू तत्त्व स्वयंसिद्ध और स्वतः प्रमाण होता है। उसे अपनी सिद्धिके लिए अन्य प्रमाण नहीं चाहिए, अतएव कहा है-'स्वयमुद्भवौ' वह स्वयं अपनी शक्तिसे जन्म, स्थिति, और संस्कारके चक्रका प्रवर्तक है। वह क्यों ऐसा करता है? अर्थात् सृष्टिके निर्माणका हेतु क्या है? यह प्रश्न बहुत बार बुद्धिको उलझनमें डालता है। पर इसका एकमात्र उत्तर यही है कि सृष्टि उसकी निजी शक्ति (स्वधा) है या क्रीडा, लीला, या माया है।

५ वृत्तौजाः— यह विशेषण अत्यंत सार्थक है। 'ओजस्' नाम तेजका है। तेज शक्ति ही है। शक्तिके दो रूप होते हैं, एक अन्तर्मुखी दूसरी बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी शक्तिसे रचना नहीं होती। रचनाके लिए ओजस् या शक्तिको बहिर्मुखी होना पडता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति जन्मभर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे तो वह प्रजनन नहीं कर सकता। अपने वृत्तौजस् रूपमें आत्मशक्तिको अपने ही केन्द्रमें लीन रख कर वह संततिको जन्म देनेमें अक्षम रहता है। अपने केन्द्र से बाहर जानेके लिए शक्तिका बहिर्मुख होना आवश्यक है। जैसे केन्द्रके दो रूप होते हैं, एक अव्यक्त केन्द्र जिसमें लम्बाई, चौडाई, मोटाई नहीं होती और न किसी प्रकारका विष्कम्भ या व्यास ही होता है। जब व्यास नहीं होता तो परिधि और मंडल भी नहीं हो सकते।

किन्तु दूसरे प्रकारका केन्द्र बिन्दु वहां है जो रेखा या व्यासके रूपमें विकसित होता है और जो छोटे-बडे महिमा भावको स्वीकार करता हुआ अपने चारों ओर अनेक मंडल बनाता है। केन्द्रका महिमा भावमें आना ही परिधि या मंडल है। इस प्रकार 'वृत्तौजाः' वह स्थिति है जिसमें स्वयंभू परब्रह्मका ओजस् स्वयं अपने ही वृत्त या केन्द्रमें अन्तर्मुखी था। जिस समय स्वयंभूतत्त्वमें बहिर्मंडलकी कल्पना होती है तब उस मंडलको 'महिमा परमेष्ठि या 'विराज्' कहते हैं। स्वयंभूको पुरुष कहा जाय तो विराज माता है।

६ तमोनुदः— प्रलयावस्थाकी रात्रिके तमको अन्तर्लीन स्वयंभूतत्त्व स्वयं अपनी ही शक्तिसे हटाता है। अतएव उसे 'तमोनुदः' कहा गया है। सृष्टि और प्रलय दोनों कालकी अवस्थाएं हैं। इनके छंदका निर्णय स्वयंभूकी इच्छा पर निर्भर हुआ था और आज भी है। इसी इच्छा या स्वधा शक्तिको काल पादमें 'कालं कालेनपीडयन्' कहा गया है।

७ अतीन्द्रियग्राह्य— व्यक्तको इन्द्रियग्राह्य और अव्यक्तको अतीन्द्रिय कहा जाता है। इस दृष्टिसे मनकी गणना भी इन्द्रियोंमें है अर्थात् जो अचिन्त्य अव्यक्त सूक्ष्म तत्त्व है उसकी उपलब्धि न इन्द्रियोंसे होती है और न मन, बुद्धिसे ही। वस्तुतः जो अचिन्त्य है अर्थात् चिंतन या विचारकी सीमासे अतीत है, उसके विषयमें शब्दोंके द्वारा कुछ भी कहना संभव नहीं। उसका वर्णन केवल 'नेति-नेति' की शैली या युक्ति द्वारा ही संभव है फिर भी व्यवहार पक्षमें शब्दोंका प्रयोग होता ही है। व्यक्त अव्यक्त, स्थूल सूक्ष्म आदि शब्दोंके जोडे सापेक्ष भावकी दृष्टिसे हैं।

८ सर्वभूतमयः इदं महाभूतादिव्यञ्जयन्— सब सूत्रोंका अर्थ है पार्थिव-दृश्य-स्थूल जगत्। इसकी रचना पंच महाभूतोंसे हुई है। महाभूतादि इस वर्गमें उन समस्त चौबीस तत्त्वोंकी गणना होती है जिन्हें सांख्य दर्शनमें स्पष्ट किया गया है अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचतन्मात्रा, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और पंच महाभूत। यही व्यक्त जगत्का स्वरूप है।

इसकी व्यंजना या अभिव्यक्ति जिस अमूर्त अव्यक्त स्रोतसे होती है वही 'स्वयंभू' है।

९ स्वयमुद्भवौ— वह स्वयं ही उत्पन्न हुआ। इसकी व्याख्या यही है कि स्वयं अपनी इच्छा या अपने निमित्तसे और अपने ही आभ्यन्तरमें लीन उपादानसे उसने स्वयं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपना आविर्भाव इस विश्वके रूपमें किया है। इस विषयमें दर्शनोंके विविध दृष्टिकोण विदित ही हैं किन्तु पुराणकार सृष्टि विद्याको जिस दृष्टिकोणसे सहमत हैं वह यही है अर्थात् ब्रह्म ही आलंबन (प्रतिष्ठा), ब्रह्म ही निमित्त (धाता विधाता), और ब्रह्म ही उपादान (आरम्भण) है। अनेक प्रकारसे अनेक शब्दोंमें इस मूल भूत तथ्यकी व्याख्या की जाती है। जो त्रिक विश्वमें है वही प्रजापतिमें भी है। उस त्रिक भावको लक्ष्यकरके ही सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष और सहस्रपात् ये तीन संकेत दिए गए हैं।

स्वयंभू और परमेष्ठि क्रमशः पिता-माता या अग्नि सोमके प्रतीक हैं। वस्तुतः स्वयंभू अपनी शक्तिसे परमेष्ठिकी रचना करके स्वयं उसमें अनुप्रविष्ट हो जाता है। इसे ऋग्वेदमें दो प्रकारसे कहा है—

प्रथमछद् अवराँ आविवेश। (ऋ. १०।८१।१)

तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्। (तैत्ति० २।६)

अर्थात् जो जिसकी सृष्टि करता है वह उसमें प्रविष्ट हो जाता है। इस नियमके अनुसार स्वयंभू जो प्रथमछद् (Archetypal) था वह अपने द्वारा निर्मित मातृ तत्त्व परमेष्ठि या विराजमें गर्भ धारण करता है। विराज मातृतत्त्व है। उसे ही 'महद् ब्रह्म' या 'योनि' कहते हैं—

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
गीता १४।३

उसीमें बीजप्रद पिता स्वयंभू अपने सर्व हुतयज्ञसे विश्वरूपी गर्भकी प्रतिष्ठा करता है। पुरुष सूक्तमें जिसके ऋषि और देवता नारायण हैं इसे स्पष्ट कहा है—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
(ऋ. १०।९०।५)

यहाँ 'ततः' का अर्थ 'स्वयंभू' ही है जो 'सहस्र शीर्षा' या 'सहस्रात्मा' है, उससे विराट् जन्म लेता है और स्वयंभूके गर्भ धारण करानेसे उस विराज्की संतति के रूपमें जिस विश्वात्मा सूर्यका जन्म होता है उसे विराज्का पुत्र होनेसे 'वैराजमनु' कहते हैं। विराज् और मनु दोनों शब्द सहेतुक हैं। राज्य या राष्ट्र वह कहलाता है जिसकी सीमा हो, जो असीम या समष्टि भाव है वही विराज् है। इसे ही अर्वाचीन परिभाषामें Universe (यूनिवर्स) कहते हैं। इसमें जो एक एक केन्द्र उत्पन्न होता है वही एक एक मन या विज्ञान है। उसे ही नासदीय सूक्तमें कहा है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
(नासदीय सूक्त ऋ. १०।१२९)

इस दृष्टिसे समष्टिगत विराज्से जन्म लेनेवाला प्रत्येक केन्द्र मन या मनु है। वह विज्ञानात्मा सूर्य भी कहा जाता है। विश्वके अविचाली केन्द्रके रूपमें सूर्य ही प्रत्यक्ष है अतएव उसे ही विश्वात्मा स्वयम्भूके मन या विज्ञानका प्रतीक माना गया है। इसी दृष्टिसे सूर्यके पुत्रको 'वैवस्वत मनु' कहा है। सूर्य विवस्वान् है अर्थात् वह विश्व रूपी वस्त्रको बुनता है या उसे सीमा भावमें लाकर वेष्टित करता है। देश और कालका ताना बाना ही विश्व है और सूर्यमें ये दोनों गुंथे हुए हैं। सूर्यका जो यज्ञ है वही विश्वका सप्ततन्तु वस्त्र है जो मन, प्राण और पंचभूतोंके सात धागोंसे बुना गया है। इसीलिए ऋग्वेदमें यज्ञको सप्ततन्तु कहा गया है और संस्कृतमें यज्ञवादी तत्त्वज्ञ 'साप्ततान्तवः' कहे जाते थे। विराज् माता है और सूर्य पुत्र है। माता अपने पुत्रके लिए विश्वरूपी पट बुन रही है।

वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति। ऋ. ५।४७।६

ऊपर जिस सृष्टि विद्याका उल्लेख किया गया है उसे ही मनुने निम्नलिखित श्लोकमें संग्रहित किया है—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
मनु. १।८

'अर्थात् उस स्वयंभूने अपनी ध्यान शक्तिसे एवं अपने ही भीतरसे जलोंका निर्माण किया और उनमें विश्वका बीज डाला'। यहाँ मनुने जिसे 'आपः' कहा है वही तत्त्व सलिल, समुद्र आदि नामोंसे ऊपर कहा गया है उसीकी संज्ञा 'ऋत परमेष्ठि' और 'विराज्' है। उस विराज संज्ञक माताकी कुक्षिसे जो प्राणतत्त्व जन्म लेता है वही 'वैराज मनु' या 'सूर्य' या 'हिरण्यगर्भ प्रजापति' है। इन संज्ञाओंको स्पष्टतासे जान लेना चाहिए। यहाँ जिसे 'स्वयंभू' 'विराज्' और 'सूर्य' कहा गया है, उन्हींके तीन अन्य नाम भी हैं। स्वयंभू 'नर' है, उससे उत्पन्न विराज् या जन्म तत्त्व या मातृतत्त्व 'नार' कहा जाता है। 'आपो नाराः इति प्रोक्ताः' यह परिभाषा पुराणोंमें अनेक बार आती है। नार संज्ञक जलोंमें निवास करनेके कारण हिरण्य गर्भ या प्राणतत्त्व ही नारायण कहा जाता है।

[क्रमशः]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्याय--मण्डल, पारडी [जि. सूरत] द्वारा संचालित

अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति

अवश्य जीतिये] [अवश्य जीतिये

परीक्षार्थियोंके लिए स्वर्णावसर

★

हमारी परीक्षाओंके सब केन्द्रव्यवस्थापकों व परीक्षार्थियोंको सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि परीक्षार्थियोंके उत्साहवर्धनार्थ प्रत्येक परीक्षामें सर्व प्रथम आनेवाले छात्रोंको कुछ विशेष पुरस्कार देनेकी योजना हमने बताई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रथमा	रजत मण्डित पदक	मूल्य १०)
प्रारंभिणी	,, ,, ,,	,, १०)
प्रवेशिका	,, ,, ,,	,, १५)
परिचय	,, ,, ,,	,, १५)
विशारद	स्वर्ण मण्डित रजत पदक	,, २०)

साहित्य परीक्षायें

साहित्यप्रवीण	स्वर्ण मण्डित पदक	,, १५)
साहित्यरत्न	(गोल्ड प्लेटेड)	,, २०)
साहित्याचार्य	,,	,, २५)

इंग्लिश परीक्षायें

अंग्रेजी I	रजत मण्डित पदक	,, १०)
अंग्रेजी II	,, ,, ,,	,, १०)
अंग्रेजी III	,, ,, ,,	,, १५)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकादशीका उपवास

मूल मराठी लेखक- श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर अनुवादक- श्रुतिशील शर्मा, तर्कशिरोमणि

[आजका नवशिक्षित नवयुवक समाज भारतीय संस्कृतिके कई प्राचीन परिपाटियोंका उपहास करता है। उनकी दृष्टिमें ये परिपाटियां अन्धविश्वास या अन्धश्रद्धासे अधिक कुछ नहीं हैं। पर इस उपहासका कारण उनके अन्दर विश्वास या श्रद्धाका अभाव नहीं है, अपितु तत्वकी अज्ञानता है। अन्धविश्वास कह कर यूं ही उडा दी जानेवाली इन पद्धतियोंमें कितना तत्त्व भरा पडा है, इस तक उन नवशिक्षितोंकी पहुंच नहीं है। उन्हीं प्राचीन परिपाटियोंमें 'एकादशीका उपवास' भी एक है। इसका पालन यद्यपि कुछ लोग आज भी करते हैं, पर वे वे ही लोग हैं जिनकी श्रद्धा भारतीय संस्कृति पर आज भी टिकी हुई है। किसी कामको केवल इसीलिए करना कि वह शास्त्रोंमें लिखा हुआ है या पूर्वज करते आए हैं, बेशक उपहासास्पद हो सकता है, पर एक बार किसी कामके तत्त्वको समझ लेने या मानलेने पर भी उस कामको न करना दुराग्रह ही होगा।

'एकादशीके उपवास' के तत्वको बतानेके लिए श्री पं. श्री. दा. सातवलेकरजीने मराठीमें जो पुस्तक लिखी है उसका हिन्दीमें अनुवाद पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है।

आशा है कि पाठक वृन्द इसे अपना कर और इस मार्ग पर चलकर आरोग्य तथा दीर्घायुष्य प्राप्त करेंगे -अनुवादक]

प्रत्येक धर्म ग्रंथमें उपवासका बडा भारी महत्व बताया गया है और किसी भी धर्माचार्यने इसके विरुद्ध अपनी कलम नहीं उठाई। धर्माचार्य जगत्के हितके लिए ही धर्मका प्रसार करते हैं, अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने उपवास करनेकी जो आज्ञा दी है, वह भी जगत्के हित के लिए ही होनी चाहिए। पर आज प्रचलित शिक्षणपद्धति के कारण लोगोंकी श्रद्धा धर्मग्रंथोंसे उठती जा रही है। वे समझते हैं, कि धर्मग्रंथोंके उपदेशोंसे हमारा कुछ फायदा होनेवाला नहीं है। इसलिए वे उपवासकी पद्धति पर भी अपना ध्यान नहीं देते।

पर फिर भी कुछ लोगोंका इस पद्धति पर महान् विश्वास है। उपवाससे अनेक रोग दूर होसकते हैं, यह बात शास्त्रीय पद्धतिसे भी सिद्ध हो चुकी है। अनेकोंने अपने दुःसाध्य रोगोंसे उपवासके द्वारा ही छुटकारा पाया। अतः अब उपवास पर अन्धविश्वास रखनेका कोई कारण नहीं है। वस्तुतः उपवासकी पद्धति एक शास्त्रीय पद्धति है।

प्राचीन परिपाटी पर चलनेवाले हिन्दु परिवारोंमें आज भी एकादशीके दिन उपवास करनेकी रीति है। सब भारत में यह दिन विशेष महत्वकी दृष्टिसे देखा जाता है। पर आजके नव शिक्षित समाजकी दृष्टिमें यह सब ढकोसला है। वे उपेक्षाकी दृष्टिसे प्रायः कहा करते हैं, कि उपवास क्यों करना चाहिए? यह सब अन्धविश्वास है। यह अज्ञानी और भोले लोगोंके मस्तिष्ककी उपज है। क्या कभी उपवाससे भी देव मिलते हैं? और यदि देव मिल भी जायें तो हमें उनसे क्या करना है? हमें तो भौतिकवादसे जगत् को बदलना है। हम इस उपवासकी पद्धतिको बिलकुल भी मान्यता देनेको तैय्यार नहीं हैं, आदि आदि। पर यदि ये शिक्षित उन प्राचीन धार्मिकोंकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ दीर्घायुवाले होते तो इनका कहना मूल्यवान् हो सकता था। पर देखा जाए तो जितने उपवास करनेवाले वृद्ध स्वस्थ रहते हैं, उसका सौवां हिस्सा भी आजके नव शिक्षितोंमें दिखाई नहीं देता। इतना ही नहीं, एक वृद्ध मृत्युका साहस पूर्वक मुकाबला करता है, जब कि नवशिक्षित उससे सहज ही हार खा जाता है।

रोगप्रतिबन्धक उपाय

धार्मिक पद्धतियोंमें एकादशीका उपवास आजके नव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षितोंके उपहासका विषय बना हुआ है। पर जब योरोप और अमेरिकाके डाक्टरोंका ध्यान उपवासके महत्व पर गया है, और उनके विचार उपवासके अनुकूल हैं। आज योरोप और अमेरिकाके डॉक्टरोंकी मान्यता है कि उपवास रोगोंको नष्ट करनेवाला तथा उनका प्रतिबन्धक है। डॉक्टरोंकी इस मान्यताकी प्रतिध्वनि अब भारतमें भी जहां तहां सुनाई देती है। और अब लोग उपवास सम्बन्धी साहित्यको पढ़नेमें अपनी रुचि भी दर्शाते हैं। पर आजसे १०-१५ वर्ष पूर्व उपवास एक उपहासका विषयमात्र रह गया था, पर आज वह स्थिति नहीं रही है।

योरोप व अमेरिकामें डॉक्टरोंने खोजके द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि उपवास रोगप्रतिबन्धक, आरोग्यवर्धक और मज्जातन्तुओंमें चेतना भरनेवाला है। इस विषय पर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित होचुकी हैं। अतः लोगोंको यह भास होने लगा है कि उपवास रोगोंको दूर करनेका एक उत्तम उपाय है।

महात्मागांधी उपवासके एक महान् भक्त थे, उन्होंने अपने जीवनमें कई बार उपवास किया, उनका भी अनुभव यही था कि उपवाससे शरीर निर्मल होता है, और रोगाणु समाप्त हो जाते हैं परिणामस्वरूप मनुष्य रोगोंसे बच जाता है। उन्होंने उपवाससे लाभोंका उल्लेख अपने जीवन चरित्रमें किया है।

इस प्रकार कई विचारशील व्यक्ति इस पर बहुत कुछ लिख चुके हैं। यदि शिक्षित मनुष्य परमेश्वरकी भक्तिके नाम पर भले ही चाहें उपवास न करें, पर आरोग्यके लिए उपवास करनेमें वे भी नहीं हिचकिचायेंगे।

उपवासके दिन

यह तो निश्चित है कि उपवास आरोग्यका एक उत्तम उपाय है। पर प्रश्न यह है कि वह किस दिन किया जाए? आजकी पद्धतिके अनुसार कई दिनके हिसाबसे उपवास करते हैं और कई तिथिके हिसाबसे। दिनके हिसाबसे उपवास करने पर सप्ताहमें एक दो दिन ही भोजनके लिए मिलते हैं, क्योंकि प्रायः प्रत्येक दिन उपवासका कारण बन जाता है। पर तिथिके अनुसार उपवास करनेमें चतुर्थी, एकादशी और चतुर्दशी ये तीन दिन ही उपवासके होते हैं, शेष बारह दिन भोजनके लिए मिल सकते हैं। तिथि और दिनके उपवासमें यह भेद है।

विष्णु भक्ति

प्राचीन धर्मग्रंथोंमें एकादशीके उपवासका बड़ा महात्म्य दिखाई पड़ता है। इस दिनके उपवाससे विष्णु प्रसन्न होते हैं, ऐसा वैष्णव ग्रंथोंमें मिलता है। पर जब शैवों और वैष्णवोंमें वैमनस्य जोर पकड़ गया, तो शैवोंने विष्णुकी भक्तिके लिए किया जानेवाला एकादशीका उपवास बन्द कर दिया और शिवकी प्रसन्नताके लिए शिवरात्री (चतुर्दशी) तथा गणेशकी प्रसन्नताके लिए चतुर्थीका उपवास शुरु कर दिया। यद्यपि गणपतिके अनुयायियोंने और शैवोंने अपने अपने उपवासके दिन अलग अलग निश्चित कर लिए, तथापि वे एकादशीके उपवासको छोड़ न सके। किसी न किसी बहानेसे उन्होंने एकादशीका उपवास जारी ही रखा। इस प्रकार एकादशीका उपवास सबके लिए आवश्यक हो गया। शैव और वैष्णव सभी दूसरे उपवास करें न करें पर एकादशीका उपवास अवश्य करते हैं।

तिथि और वारोंके उपवास

प्राचीनग्रंथोंमें तिथियोंके विशेषकर एकादशीके उपवासका जितना माहात्म्य मिलता है, उतना वारोंके उपवासका नहीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वारोंके उपवासका प्रचलन बादमें शुरु हुआ। एकादशीके उपवास करनेवालेको किस दिन एकादशी है यह पता लगाना पड़ता है। उसी प्रकार चतुर्थी प्रदोष, शिवरात्रीका भी पता लगाना पड़ता है। और इसके लिए उसे या तो पंचांग देखना पड़ता है या फिर ज्योतिषीके पास जाना पड़ता है, इसके सिवाय तीसरा मार्ग और कोई नहीं है। इससे यह ज्ञात हो जाएगा कि तिथिका दिन जाने बिना तिथि सम्बन्धी उपवास करना मनुष्यके लिए असम्भव ही है। आज तो शिक्षितोंको भी तिथियोंका ज्ञान नहीं रहता फिर अशिक्षितोंकी तो बात ही क्या? इस अड़चनको दूर करनेके लिए वारोंके उपवासोंका प्रचलन हुआ और उपास्योंके भेदके कारण प्रत्येक वारके उपवास शुरु हुए। शंकरका सोमवार, देवीका मंगलवार, विठोबाका बुधवार, दत्तात्रेयका गुरुवार, लक्ष्मीका शुक्रवार, शनिका शनिवार और सूर्यका रविवार इस प्रकार प्रत्येक वारका एक-एक देवता होनेके कारण उनके उपासकोंने भी उस उस दिन उपवास रखना प्रारंभ कर दिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब तक एक देवका भक्त दूसरे देवके दिन उपवास नहीं करता था, तबतक उसे सप्ताहमें ६ दिन भोजनके लिए मिलते थे। इससे यद्यपि एकादशीका उपवास नहीं होता था, पर फिर भी सप्ताहमें एक दिनके लंघनसे लोगोंका आरोग्य बना रहता था। पर बादमें जब भिन्न भिन्न देवोंके उपासकोंमें स्पर्धा दूर हो गई और उपासक सब देवोंको आदरकी दृष्टिसे देखने लगे तो उपासकोंकी प्रवृत्ति एक देव की अपेक्षा अधिक देवोंके उपवासकी तरफ होने लगी और इस प्रकार उपवासके दिन ज्यादा होने लगे और भोजनके दिन कम। पर इस तरह उपवाससे होनेवाला लाभ तो हुआ नहीं, उलटी अशक्तता बढने लगी।

इसी कारण तिथि सम्बन्धी उपवासोंका प्रचलन कम होकर वार सम्बन्धी उपवासका प्रचलन ज्यादा हो गया। तिथिके उपवासके मूल कारणको लोग भूल गए और उन्होंने यह समझ लिया कि किसी भी दिन किया गया उपवास सीधा परमेश्वरके पास पहुंचता है, और इसी कारण उपवासकी यह दुरवस्था होगई।

आज धार्मिक कथाओंका सुनना सुनाना जो पुराने लोग करते हैं, उन्हें उन कथाओंका तत्व जरा भी समझमें नहीं आता पर वे श्रद्धासे अवश्य करते हैं। इसके विपरीत आज के लोग केवल उपवासका विरोध करते हैं और वह भी बिना तत्वविवेचन किए ही। यदि कोई तत्वकी विवेचना करके और उस तत्वमें कुछ सार न देखकर नास्तिक बना हो तो वह स्वीकरणीय है, पर आजकी नास्तिकताका कारण धर्मके प्रति उदासीनता है, तत्वविवेचना नहीं।

अब तककी विवेचनासे यह स्पष्ट होगया होगा कि तिथि वार उपवासकी परिपाटी पुरानी है, और उनमें भी सर्व साधारण उपवास केवल एकादशीका ही है। आज भी बहुतसे लोग श्रद्धापूर्वक एकादशीका उपवास करते हैं। बाकी चतुर्थी और चौदसका उपवास सर्व साधारण नहीं करते। वारोंके उपवास आधुनिक हैं, पर उनमें एक भी ऐसा उपवास नहीं, जिसे सब लोग करते हों। जो तत्व तिथियोंके उपवासमें है, वे दिनोंके उपवासमें नहीं। वे तत्व कौनसे हैं, उन्हें हम यहां देखते हैं।

चक्रका सम्बन्ध

चन्द्रकलाकी वृद्धि और क्षयके साथ वनस्पति और प्राणियोंमें रहनेवाले अंगोंके रसकी सत्ववृद्धि और सत्वक्षयका सम्बन्ध है। यह बात यद्यपि वैदिक शास्त्रज्ञोंने अब थोडा सा इस बातको स्वीकार किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि तिथि वार उपवासोंसे आरोग्यका विशेष सम्बन्ध है चन्द्रकलाकी वृद्धिके साथ तिथियोंका जैसा सम्बन्ध है, वैसा वारोंका नहीं।

इसलिए वारोंके अनुसार किया गया उपवास कभी ठीक समय पर होता है और कभी अयोग्य समय पर भी होता है। अमुक तिथिमें चन्द्रमाकी स्थिति हमेशा निश्चित रहती है। इसलिए चन्द्रकी उस स्थितिका प्रभावशरीरपर अवश्य ही पडेगा। इस लिए विशिष्ट तिथि पर उपवास करनेसे यदि फायदा होनेवाला है तो वह अवश्य ही होगा।

चन्द्र और सूर्यके आकर्षणके अनुसार प्रतिदिन शुक्लपक्ष, और कृष्णपक्षका समय बदलता रहता है, यह सबको मालूम है। समुद्रमें पानीके बढनेके समय अर्थात् शुक्ल पक्षमें तोडे गए वृक्ष या पौधोंमें जलतत्व अत्यधिक बढ जानेके कारण उनमें कीडे लग जाते हैं, पर समुद्रमें पानी कम होनेके समय अर्थात् कृष्णपक्षमें पौधोंको काटने पर उनमें कीडे नहीं पडते। इसका अनुभव आर्द्र प्रदेशमें ज्यादा और शुष्क प्रदेशमें कम होगा।

इससे पाठकोंको यह ज्ञात हो जाएगा कि वनस्पति और प्राणियोंके अंगरस पर चन्द्र सूर्यके आकर्षणका प्रभाव पडता है। पूर्णिमा और अमावास्याके दिन वनस्पतियोंमें जलतत्व अत्यधिक होता है। क्योंकि उस दिन सूर्य और चन्द्र सम रेखामें रहते हैं और अमावास्यामें दोनोंके एक ही स्थानपर रहनेके कारण उस दिन इनका आकर्षण ज्यादा प्रमाणमें होता है। अष्टमीके दिन उनका आकर्षण सबसे कम होता है क्योंकि उस दिन वे दोनों समकोण पर रहते हैं।

अष्टमीके दिन जल तत्वकी अत्यन्त न्यूनता होती है। नवमीसे उसकी वृद्धि प्रारम्भ होती है। फिर पूर्णिमाके दिन अधिक और अमावास्याके दिन तो अत्यधिक जल तत्वकी वृद्धि होती है। प्रतिपदासे जल तत्वका क्षय शुरु होता है और अष्टमीके दिन आकर अत्यन्त कम हो जाता है। जल तत्वकी वृद्धिके दिनोंमें वृक्षको काटनेसे उनमें कीडे पड जाते हैं अतः जल तत्वकी वृद्धिके समय काटे गए वृक्ष ज्यादा समयतक टिकते नहीं। आम, बांस आदि कमजोर वृक्षोंपर इसका परिणाम बहुत जल्दी पडता है, पर सागौन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बबूल आदि सशक्त वृक्षोंपर इसका प्रभाव शीघ्र दृष्टि गोचर नहीं होता। चन्द्रके आकर्षणका परिणाम वृक्षोंपर जितना होता है, उससे कहीं अधिक परिणाम मनुष्योंपर होता है, क्योंकि मनुष्य शरीर अत्यधिक कोमल होता है और मनुष्यके मनका सम्बन्ध चन्द्रमाके साथ बहुत ज्यादा है। यह बतानेके लिए ही मनकी चन्द्रके साथ समानता वेदोंमें अनेक तरहसे दिखाई है। सोमका अर्थ भी वनस्पति, चन्द्र और मन है। मनका देवता भी चन्द्रमा ही है। मानसिक शक्तिसे दुर्बल मनुष्यकी वृद्धि और क्षय भी चन्द्रके अनुसार होते हैं। मस्तिष्कके बिगड जानेसे हुए हुए पागलोंका पागलपन भी चन्द्रमाके क्षय और वृद्धिके आधारपर कम ज्यादा होता रहता है। ये सब इस बातको बताते हैं कि मनुष्यका चन्द्रमाके साथ बडा घनिष्ट सम्बन्ध है।

खेडगांवमें लोग वृक्ष काटनेके लिए जल तत्वकी वृद्धि और क्षयके दिन पूछनेके लिए ज्योतिषीके पास जाते थे और यथासंभव क्षयके दिनोंमें ही वृक्ष काटनेका प्रयत्न करते थे। इसी तरह साधारण लोगोंकी यह धारणा रहती है कि अमावास्या और पूर्णिमाके दिनोंमें बीमारी बढती है और अन्य दिनोंमें कम होती है। यद्यपि अज्ञानी लोगोंका कथन ज्यादा विश्वसनीय नहीं होता, फिर भी उनका अनुभव परीक्षणीय है।

न्यूटनके जीवनकी एक घटना है कि एक बार एक जंगलमें जाते हुए उसकी भेंट बकरियोंको चरानेवाले एक गडरियेसे हुई। गडरियेने देखा कि उसकी बकरियां एकाएक भाग भागकर धूपसे बचनेके लिए पेडोंकी छायामें जाकर खडी होने लगीं। यह देखकर उसने न्यूटनसे कहा कि 'एक घंटेके अन्दर ही बरसात गिरनेवाली है'। न्यूटनको उसकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। पर जब वह घर पहुंचनेतक पानीसे बुरी तरह भीग गया तो उसे गडरियेकी बातपर विश्वास करना ही पडा। यह भेद है शास्त्र और अनुभवमें। इसलिए बुद्धिमान्‌की दृष्टिमें सर्वसाधारणों के अनुभवोंका भी मूल्य होता है।

हमने भी बडी सूक्ष्म दृष्टिसे कई वर्षोंतक इस बातका निरीक्षण किया, और उससे जो अनुभव हमें मिले, वे इस प्रकार हैं।

अनुभव

१ मृत्युकी संख्या द्वादशीसे तृतीया तक अधिक रहती है। उनमें भी शुक्ल पक्षके बजाए कृष्ण पक्षकी इन तिथियोंमें अधिक मृत्यु होती है।

२ द्वादशीसे तृतीया तक यदि कोई रोग शुरू हो जाए तो तृतीया तक उस रोगका क्षय नहीं होता और यदि बीमार मृत्युके संन्निकट हो तो उसका बचना मुश्किल होजाता है।

३ चतुर्थीसे एकादशी तकके बीचमें उत्पन्न हुए रोग साधारणतया सौम्य होते हैं और पहले उत्पन्न हुए रोगोंकी दशा इन तिथियोंमें कुछ सुधर जाती है और ठीक होनेवाले रोग इन तिथियोंमें ठीक भी हो जाते हैं।

४ बहुत समयसे रोगग्रस्त मनुष्य प्रायः द्वादशीसे तृतीया तकके मध्यमें ही मरते हैं, अथवा इन तिथियोंमें उनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो जाती है।

५ औषधियोंका परिणाम इन तिथियोंमें आशादायक नहीं होता। पर चतुर्थीसे एकादशी-पर्यन्त चिकित्साका परिणाम लाभकारी होता है।

६ छूतकी बीमारियोंके समय भी बीमार पडने तथा मरनेवालोंकी संख्या ऊपरकी तिथियोंके अनुसार न्यूनाधिक होती रहती है।

सूर्य चन्द्रके आकर्षणके कारण शरीरके जीवन रसमें भी न्यूनाधिकता होती रहती है, इसलिए द्वादशीसे तृतीयातकके दिन मनुष्यकी आरोग्यताके लिए अनिष्टकारी होते हैं। जो सशक्त हैं उनके शरीरमें भी उपरोक्त कारणोंसे इन तिथियोंमें रोगाणुओंकी वृद्धि की संभावना रहती है। इनकी बाढ शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्षमें अधिक होती है।

सूर्यकी जीवनशक्ति

सूर्यसे इस पृथ्वी पर विपुलमात्रामें जीवनशक्ति प्राप्त होती है, यदि उसमें जरासी भी न्यूनता आगई तो मनुष्यके आरोग्य पर उसका बडा अनिष्टकारक परिणाम होता है। यदि सूर्य पर किसी तरहका प्रतिबन्धक पदार्थ जरा सा भी आ जाए तो उसकी जीवनशक्तिमें कमी आजाती है और परिणाम स्वरूप हवामान, मनोवृत्ति, बरसात सभी पर उसका अनिष्ट प्रभाव पडता है। कुछ दिन यदि बरा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर बादल छाये रहें, सूर्यदर्शन जरा भी न हो तो अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

द्वादशीसे लेकर अमावास्या तक सूर्यके क्षेत्र पर चन्द्रमाका प्रभाव रहनेके कारण सूर्यकी जीवनशक्ति बहुत मात्रामें कम हो जाती है, इसलिए यह स्थिति अशक्तोंके लिए घातक सिद्ध होती है, और अमावास्याके व्यतीत होजाने पर सूर्यके क्षेत्रसे चन्द्रका प्रभाव भी कम होता जाता है और सूर्यसे जीवनशक्ति ज्यादा प्राप्त होनेके कारण अमावास्याके विशेषतः तृतीयाके पश्चात्‌के १०–१५ दिन लाभकारी होते हैं।

सूर्यकी ग्रहमालाओंमें सूर्य और चन्द्र धनशक्ति और ऋणशक्तिके केन्द्र हैं। उपनिषदों और वेदोंमें भी इन ग्रहोंके सम्बन्धमें अनेक तरहके वर्णन मिलते हैं। आधुनिक भौतिक शास्त्रके आधारपर भी यह सिद्ध होचुका है कि सूर्य जीवनशक्तिका पुंज है। इसलिए वह धनशक्तिका केन्द्र है। चन्द्रकी स्थिति इससे उल्टी है। परप्रकाशी होनेके कारण अपना प्रकाश वह सूर्यसे प्राप्त करता है इसलिए वह सूर्यका ऋणी है। इस प्रकार सूर्य धनी और चन्द्रमा ऋणी है। अमावास्याके दिन ऋणशक्तिवाला चन्द्र सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आजाता है। इसलिए सूर्यसे पृथ्वी पर आनेवाली जीवनशक्ति उस दिन बहुत कम हो जाती है। सूर्यग्रहण इसी दिन पडता है उस कारण भी पृथ्वी पर आनेवाली सूर्यकी जीवनीशक्ति बहुत कम हो जाती है। इस कारण अनेक जीवाणु मर जाते हैं ऐसा आधुनिक शास्त्रज्ञोंका मत है। प्रति अमावास्याको भी सूर्यकी जीवनशक्तिके कम मात्रामें प्राप्त होनेका भी यही कारण है। ऋग्वेदका कथन है—

सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च

'सूर्य जंगम–चलनेवाले और स्थावर–न चलनेवाले जगत्‌की आत्मा है'। वह अपनी शक्तिसे स्थावर और जंगम जगत्‌को पूर्ण करता है। इससे यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि जिस जिस प्रमाणमें सूर्य और पृथ्वीके बीचमें चन्द्र आता जाएगा उसी प्रमाणमें उससे प्राप्त होनेवाली जीवनशक्ति भी कम होती जाएगी। कृष्णपक्षमें दशमीके बाद चन्द्र सूर्यके पास आता जाता है और अमावास्याके दिन वह पूरी तरह सूर्य और पृथ्वीके मध्यमें आकर पृथ्वी पर आनेवाली सूर्यकी जीवनशक्तिको रोकता है। इसीलिए सूर्यग्रहणके अवसर पर उससे प्राप्त होनेवाली जीवनशक्ति बहुत ही कम होजाती है। अतः कृष्णपक्षके उत्तरार्धमें सूर्यसे जीवनशक्ति कम प्राप्त होनेके कारण रोगी मनुष्योंके लिए इन दिनोंका प्रतिकूल होना स्वाभाविक ही है। अमावास्याके दिन सामान्य मनुष्योंको जो भय लगता है, उसका भी कारण यही है।

वनस्पतियोंमें रस बढनेके दिनोंमें अंगरस जडसे शाखाओंकी तरफ वेगसे दौडने लगता है और घटनेके दिनोंमें रस शाखाओंसे जडकी तरफ जाता है। इस कारण रस बढनेके दिनोंमें तोडे गए पौधोंमें कीडे जल्दी और अधिक लगते हैं। मनुष्यके शरीरमें रक्त परिभ्रमण पर भी इसका प्रभाव पडता है। ऊपरके कारणों पर विचार करनेसे ज्ञात होगा कि अष्टमीके दिन सूर्यसे मिलनेवाली जीवनशक्ति अधिक पूर्ण और निर्दोष होती है। आकर्षणके कारण रक्त परिभ्रमण (Circulation of Blood) पर होनेवाले अनिष्ट परिणाम इस दिन कम हो होते हैं। तृतीयासे लेकर अष्टमी तक इष्ट परिणामों और बादमें अनिष्ट परिणामोंके होनेकी संभावना रहती है। इसलिए इस पाक्षिक अनिष्ट परिणामोंसे अथवा रोगाणुओंके बढनेकी संभावनासे मनुष्योंकी रक्षा हो इसलिए कुछ उपाय करना आवश्यक था। वह उपाय एकादशीके उपवासके रूपमें शास्त्रज्ञोंने लोगोंके सामने रखा।

उपवासकी निर्दोषता

शुक्ल और कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन उपवास करनेसे शरीरके अन्दरका मल नष्ट हो जाता है, रोगाणु नष्ट हो जाते हैं और शरीरके स्वस्थ हो जानेके कारण आगेके दिनोंमें होनेवाले अनिष्टकारक परिणामोंका शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पडता। स्वस्थ मनुष्यके लिए पन्द्रह दिनोंमें इस एक दिवसका उपवास पर्याप्त है। पर जो रोगोंके भक्त हैं उनके लिए अमावास्यासे पहले चतुर्दशीके उपवासका भी विधान है। पूर्णिमाके पहलेके चतुर्दशीके दिन उपवास करनेका विधान नहीं है, क्योंकि अमावास्याके दिन अनिष्टकारक परिणामका जितना भय रहता है, उतना पूर्णिमाके दिन नहीं। त्रयोदशीके दिन प्रदोषकाल (संध्याकाल) के समय उपवास करना चाहिए। अमावास्याके बाद शुक्लपक्षमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थीको पूर्ण उपवास और कृष्णपक्षकी चतुर्थीको आधे उपवासका विधान ऐच्छिक है। बाकीके उपवास करें या न करें पर एकादशीका उपवास आवश्यक है, ऐसा शास्त्रकारोंका मत है। तिथिवार किये जानेवाले उपवासोंकी संख्या इतनी ही है, पर उनकी योजना अद्भुत है—

मासका प्रारंभ, शुक्लपक्ष

१. चतुर्थी— द्वादशीसे लेकर तृतीया तकके दिनोंमें सूर्यसे जीवनशक्ति कम मिलनेके कारण कुछ मल शरीरमें यदि एकत्रित हो गया हो वह नष्ट होजाए और आगेके दिनोंमें प्राप्त होनेवाली निर्दोष जीवनशक्तिका पूर्णतया लाभ उठाया जा सके इसलिए पूरे दिनका लंघन करना चाहिए। फिर दशमी तक कोई लंघन नहीं।

२. एकादशी— आगेके सप्ताहमें आनेवाली प्रतिकूल परिस्थितिसे बचाव करनेके लिए एक दिनका पूरा लंघन।

३. प्रदोष— सदोष प्रकृतिवाले लोगोंके लिए प्रतिकूलसप्ताहमें आधा उपवास।

इसके आगे पूर्णिमाके निकलजानेके बाद—

कृष्णपक्ष

१. संकष्टी चतुर्थी— प्रतिकूल सप्ताहके निकलजाने पर उन दिनोंमें हुए हुए दोषको नष्ट करनेके लिए आधे दिनका उपवास।

१. एकादशी— आगे आनेवाले विशेष प्रतिकूल सप्ताह में अनिष्ट परिणामोंसे बचनेके लिए पूर्ण लंघन।

३. प्रदोष— सदोष प्रकृतिवालोंके लिए आधा उपवास।

४. चतुर्दशी- (शिवरात्री)— अमावास्याके विशेष प्रतिकूल परिस्थितिको हटानेके लिए पूर्ण लंघन।

शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्षमें अमावास्याके निकट एक अधिक उपवास रखा गया है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। स्वस्थ मनुष्यके लिए एकादशीका उपवास ही पर्याप्त होता है, पर जो जल्दी जल्दी बीमार पडते हैं उनके आरोग्यके लिए यह सब योजना है, इसलिए वह सब ऐच्छिक है।

इस प्रकार उपवाससे शरीरकी शक्ति बढती है और रोग बीज नष्ट होते हैं।

तिथिवारके उपवासोंमें जो तत्व है वह दिनों (वार) के उपवासोंमें नहीं है, क्योंकि वार किसी भी तिथि पर आ सकते हैं, अर्थात् यह कोई निश्चित नहीं है कि बृहस्पति वार हमेशा एकादशीके दिन ही पडेगा, वह अमावास्या, पूर्णिमा, द्वादशी किसी दिन भी पड सकता है। इस कारण सूर्य चन्द्रके आकर्षणके कारण होनेवाले फेर बदलसे वारोंके उपवासोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण शास्त्रकारोंने जितना महत्व तिथिके उपवासोंका बताया है, उतना वारोंके उपवासोंका नहीं। सुविधाकी दृष्टिसे आज यद्यपि वारोंके उपवासका प्रचलन अधिक है, पर तिथिके उपवास अधिक शास्त्र सम्मत और उपवास चिकित्साके समीप हैं।

जो पुराने लोग उपवास करते हैं वे बहुत रोगी नहीं होते।

नई संस्कृतिके उपासक व प्राचीन संस्कृतिके उपहासक तथा दिनमें छै बार खाकर बिल्कुल उपवास न करनेवाले नव शिक्षित लोग हमेशा रोगी होते हैं। पर प्राचीन लोग अपने धर्म भीरुताके कारण उपवास करते हुए तथा अन्य दिनोंमें सिर्फ एक या दो बार ही खाकर बीमारीको पास फटकने नहीं देते। उनके शरीरमें संचित रोगोत्पादक मल योग्य समयपर उपवास करनेके कारण नष्ट हो जाता है। पाठक वृन्द इसका अनुभव लें।

योरोपीयन लोगोंको दिनमें छै बार खाते हुए देखकर भारतीय भी उसी प्रकार करने लगे। सबेरे चाय, थोडासा नाश्ता, दोपहर भोजन, डेढ बजे कुछ हलका खाना, चार बजे फिर चाय, शामको सात बजे भोजन, रातमें फिर चाय यह क्रम हमारे भारतीय साहबोंका है। योरोपीयोंका देश ठण्डा होनेके कारण वहां भूख ज्यादा लगती है, पर वैसी स्थिति भारतमें नहीं है। यह सीधी सी बात भी लोग भूल जाते हैं और दूसरोंका अन्धानुकरण करने लगते हैं।

दो समय भोजन

हमारे शास्त्रोंमें एक या दो समयका ही भोजन लिखा हुआ है। बचपनमें शरीरके बढनेके कारण बच्चोंको चार बार खाना पडता है, पर बडोंकी स्थिति वैसी नहीं है। बडोंको सिर्फ दो समय ही खाना चाहिए। तीसरी बार मुंहमें कुछ भी न डालें। वृद्धोंको सिर्फ एक ही वक्त खाना चाहिए। हमारे शास्त्रोंका इस तरहका उपदेश है। पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्धानुकरण करनेवाले लोगोंको यह पसन्द नहीं आएगा। वे पुराने लोगोंके अन्धविश्वासको भला बुरा कहते हुए दिनमें छै बार खाते हैं, और इच्छानुसार खूब चाय पीते हैं और अन्धानुकरण करते हैं। वह अन्धविश्वास लाभप्रद है या यह अन्धानुकरण, विचारणीय है।

मुंहमें क्षार उत्पन्न होती है और वह दांतोंमें अटके हुए अन्नके टुकडोंको धीरे धीरे निकाल फेंकती है। पर यदि पहलेके अन्नके टुकडोंके दांतोंसे दूर होनेके पहले ही दुबारा कुछ खालें तो पहले अन्न कणके ऊपर दूसरे अन्न कण जाकर चिपक जाते हैं और अन्दरके अन्न कण सडने शुरू हो जाते हैं। दिनमें बहुत बार खानेवालोंके मुंह कभी भी साफ नहीं रहते। योरोपीयोंके दांत भी अच्छे नहीं रहते। उनके दांत अक्सर कीडे लगे हुए होते हैं।

दांत

सब जगत्के मानवोंमें हिन्दुओंके दांत उत्तम होते हैं और जहां नई संस्कृति अभी पहुंची नहीं वहां हिन्दुओंके दांत अभी भी उत्तम हैं। पर पाश्चात्योंका अन्धानुकरण करनेके लिए दिनमें अनेक बार खानेवाले तथा बिल्कुल उपवास न करनेवाले भारतीय साहबोंके भी दांत खराब होते हैं और दिन-ब-दिन दान्तोंके रोग बढते ही जाते हैं। ब्रशके प्रयोगसे मसूडे छिल जाते हैं और उनके द्वारा कृमि दांतोंमें घुसते हैं अतः इस साधनसे भी दन्त रोग बढते ही जाते हैं।

अपचनसे भी दंत रोग बढते हैं और दान्तोंमें विष बढने लगता है और भोजन करते समय लारके साथ वही विष पेटमें जाकर अनेक रोगोंका कारण बनता है। कभी कभी तो यह क्षय जैसे भयंकर रोगोंका भी कारण बन जाता है। पर इस नाशका कारण अपना आचार ही है, यह बात किसीके समक्षमें नहीं आती। नवयुवक यदि दो ही समय खावें और एकादशीका उपवास रखें तो ऊपर कही गईं आपत्तियां उन्हें कभी तंग न करें।

प्राचीन लोग आज उपवासके दिन केवल अन्न नहीं खाते। पर और सभी पदार्थ खाते हैं। अथवा उपवासके दिन चाय या कॉफी पीते हैं। पर यह प्रकार भी घातक है। आरोग्यके लिए उपवास कैसे किया जाए इसका सविस्तार विवेचन करके यह समझ लेना चाहिए कि उपवासका सम्बन्ध केवल जीभसे न होकर सब इन्द्रियोंके साथ है।

व्रतोंकी योजना

अपने धर्ममें उपवास व व्रतोंकी जो प्राचीन योजना है वह इतनी सहेतुक, बुद्धि पुरःसर तथा दूर तकका विचार करके की गई है, कि इसकी योजना करनेवालोंकी जितनी भी प्रशंसाकी जाए थोडी ही है। हमारे धर्ममें बहुतसे त्योहार तिथिसे सम्बन्धित हैं, उसी प्रकार उपवास भी एकादशीसे सम्बन्धित है। प्रत्येक त्योहारका तिथिके साथ सम्बन्ध दिखाना इन थोडेसे पृष्ठोंमें असंभव है, तथापि यह विषय यहां अंश रूपसे दिखाते हैं। 'दशमी, एकादशी और द्वादशी' इन तीन तिथियोंके साथ त्योहारोंका क्या सम्बन्ध है और उनसे हमें क्या बोध मिलता है, इसका विचार हम अब करते हैं—

विजयादशमी

दशमीका बडा पर्व 'विजया-दशमी' (दशहरा) है। दशमी विजययुक्त होती है। दशमीका अर्थ 'दश+शमी' है। पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय इन दसोंका शमन करना, संयम करना अर्थात् दसों इन्द्रियोंको स्वाधीन रखना, यही 'दश-शमी' अथवा दशमीका साध्य है। यदि दसों इन्द्रियें अपने आधीन रहीं, अपने दिव्य रथके दसों दिव्य घोडे यदि अपने अधिकारमें रहें तो इस 'दशरथ' का इच्छित स्थान पर पहुंचना संभव हो सकेगा। जिस मंजिल पर मनुष्यको पहुंचना है, वहां वह सरलतासे पहुंच सकेगा। इसीका नाम विजय है, इसीलिए इस दशमीको 'विजया-दशमी' कहते हैं। इसी 'दशरथ' से 'राम' रूपी प्रचण्ड शक्ति उत्पन्न होती है और वह ही दसों इन्द्रियोंसे विषयोपभोग करनेवाले 'दशमुख' पर विजय प्राप्त करती है। दशरथ दसों इन्द्रियोंके संयमसे धर्ममार्ग पर सत्कार्य करनेके लिए लगानेवाला है और दशमुख दसों इन्द्रियोंको बेकाबू करके अधर्म मार्ग पर चलानेवाला है। इन दोनोंका युद्ध सनातन है और अन्तमें दशरथके रामकी ही विजय होती है। जगको जीतनेवाले दशमुखके पुत्र इन्द्रजीतकी विजय नहीं होती। यह सारांशमें विजया दशमीका सार है।

संयमी एकादशी

इन दश इन्द्रियोंके संयमके बाद ही ग्यारहवें इन्द्रिय मन पर काबू पाना संभव है। यह काम दशमीके बाद एकादशी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के दिन करें। ग्यारहों इन्द्रियों पर अधिकार करनेका उपाय यदि प्रतिदिन न हो सके तो पन्द्रह दिनमें कमसे कम एक दिन तो अवश्य प्रयास करना चाहिए और वह भी ११ की संख्याके द्वारा बताये गए एकादशीके दिन करना चाहिए। क्योंकि इस दिन अनारोग्यका वातावरण नष्ट होकर चारों ओर आरोग्यका वातावरण फैला रहता है। इस दिन अनारोग्यका प्रतिबन्ध करके ग्यारहों इन्द्रियोंके संयम करनेका अनुष्ठान करना चाहिए। यह तत्व दिखानेके लिए निश्चित किया हुआ एकादशीका उपवास बहुत महत्वपूर्ण है।

वामन द्वादशी

दशमीसे दसों इन्द्रियोंका दमन करके विजय प्राप्त करनेकी योग्यता आत्म संयमसे अपने अन्दर बढा ली। बादके सब इन्द्रियों पर शासन करनेवाले मनके शमनका अनुष्ठान एकादशीके दिन किया, इस प्रकार ग्यारहों इन्द्रियोंको स्वाधीन करके उन पर पूर्ण स्वामित्व स्थापित करनेके बाद अपनी आत्मिक शक्तिके बढनेसे आगे क्या होता है, यह वामन द्वादशीमें दिखाया है—

वामनका रूप बहुत छोटा है, वह आयुसे भी छोटा है और शरीरसे भी। कोई नहीं कह सकता कि उसमें पाशवी शक्ति है। दशमी और एकादशीके गुप्त तत्वको आत्मसात् करके अद्वितीय आत्मिकशक्तिसे प्रभावशाली बने हुए उस अहिंसावादी, निःशस्त्र और सत्याग्रही बालवीरके आगे एक बलशाली सम्राट्की शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित प्रचण्ड पाशवी शक्ति तथा सब साम्राज्यकी शक्तिके मदसे युक्त 'बली' नामक विदेशी सम्राट्के सब शस्त्रास्त्र व सेनायें निरुपयोगी हो गए। दशमी और एकादशीके द्वारा दिखाये गए आत्मसंयमन रूपी तपका प्रभाव यह है। पहलेके कठोरतपके कारण ऐसा आत्मिक बल बढता है। इसका और अधिक विस्तार करनेकी आवश्कता नहीं हैं।

आत्माकी सोलह कलायें होती हैं, इसलिए उसे 'षोडशी' कहते हैं। इन सोलह कलाओंमेंसे ग्यारह इन्द्रियोंके संयमके कारण आत्माकी ग्यारहों कलायें प्रकाशने लगती हैं और मनके आगेकी एक और आत्मिक कला द्वादशीके दिन चमकने लगती है। इस प्रकार आत्मिक शक्तिसे युक्त निःशस्त्र अहिंसावादी तथा सत्याग्रही वीरने पाशवीशक्ति पर चलनेवाले बली-वास्तवमें बलशाली शत्रु-के साम्राज्यको उलट दिया। आत्मशक्तिके विकासका यह चमत्कार है। इस प्रकार कुछ पर्वोंका तिथिके साथ सम्बन्ध दिखाया है। प्रारम्भसे ही तिथियों और पर्वोंका सम्बन्ध इतना बोधप्रद है कि इसकी योजना करनेवालोंकी बुद्धिको देखकर आश्चर्य चकित हो जाना पडता है।

ग्यारहों इन्द्रियोंका संयम करके शरीरकी पाशविक शक्ति पर आत्मिकशक्ति द्वारा विजय प्राप्त करनेका मार्ग इस प्रकार एकादशीका उपवास बताता है। इतने बडे विवेचनका यह सार है।

इन्द्रियोंका उपवास

ऊपरके विवेचनसे पाठकोंके ध्यानमें एक बात आएगी कि एकादशीका उपवास वस्तुतः एक इन्द्रियका (पेट) उपवास है अर्थात् जो इन्द्रिय खाना खाती व पचाती है उसका काम आजके दिन बन्द रहता है अर्थात् उसको इस दिन विश्रान्ति मिलती है। इस एक इन्द्रियके अलावा और बाकी दस इन्द्रियें हैं, उन्हें भी विश्राम मिलना चाहिए। अतः यदि उन इन्द्रियोंको भी विश्राम दिया जाएगा तभी 'एकादशी' वास्तविक होगी।

पर देखा जाए तो आज एक भी इन्द्रियको एकादशीके दिन विश्राम नहीं मिलता। क्योंकि एकादशीके निरशनके पदार्थ बहुत बन गए हैं अर्थात् एकादशीके दिन सिर्फ अन्न (गेहूं चना आदि धान्य) नहीं खा सकते बाकी सब खा सकते हैं। इससे होता यह है कि लोग उस दिन अन्न न खाकर अन्य कन्द मूल फल खाते हैं और यदि यह कहा जाए तो अनुचितन होगा कि लोग और दिनोंकी अपेक्षा उस (एकादशीके) दिन ज्यादा ही खा जाते हैं। अतः उस दिन एक इन्द्रिय (मुख) का भी उपवास नहीं होता फिर अन्य इन्द्रियोंके विषयमें तो कहना ही क्या? निरशनका अर्थ है 'न खाना' पर उस दिनके पदार्थ लोगोंने निकाल रखे हैं कि कई तो उन पदार्थोंको 'उपवासके दिनका भोजन' ही कहते हैं।

आजन्म ब्रह्मचारीके पुत्र, अविवाहित कुमारीके पति, तथा वन्ध्याके पुत्रके समान 'उपवासके दिनके भोजनकी' बात है। पर यह पद्धति आज भी चालू है। वास्तवमें तो जो मनुष्य अशक्त हैं और जो उपवास नहीं कर सकते उनको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

मादर्शीका

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu